● सयोजक–सम्पादक

डॉ० नरेन्द्र भानावत

● सम्पादक

डॉ० नरेन्द्र भानावत

कन्हैयालाल लोढ़ा

● प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ,
समता भवन, रामपुरिया मार्ग,
बीकानेर (राजस्थान)

● प्रथम संस्करण : १९७७ (११०० प्रतियां)

● मूल्य . तीन रुपया

मुद्रक—फ्रैण्ड्स प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, जयपुर–३

प्रकाशकीय निवेदन

यह वडा सुखद सयोग है कि भगवान् महावीर के २५वें निर्वाण शताब्दी समारोह के समापन के साथ ही उन्ही के धर्मशासन के इस युग के महान् क्रातिकारी युग-पुरुप श्रीमद् जवाहराचार्य का जन्म शताब्दी-समारोह मनाने का हमे सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा का जन्म स १९३२ मे कार्तिक शुक्ला चतुर्थी को थादला (म प्र) मे हुआ था। १६ वर्ष की अवस्था मे आपने जैन भागवती दीक्षा अगीकृत की और स १९७७ मे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। स २००० में आषाढ शुक्ला अष्टमी को भीनासर (वीकानेर) मे आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य श्री का व्यक्तित्व वडा आकर्पक और प्रभावशाली था। आपकी दृष्टि वडी उदार तथा विचार विश्वमैत्रीभाव व राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत थे। आपने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन के सत्याग्रह, अहिंसक प्रतिरोध, खादीधारण, गोपालन, अछूतोद्धार, व्यसनमुक्ति जैसे रचनात्मक कार्यक्रमो मे सहयोग देने की जनमानस को प्रेरणा दी और दहेजप्रथा, वालविवाह, वृद्धविवाह, मृत्युभोज, सूदखोरी जैसी कुप्रथाओ के खिलाफ

लोकमानस को जागृत किया । आपके राष्ट्रधर्मी क्रान्तद्रष्टा व्यक्तित्व से प्रभावित होकर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, प मदनमोहन मालवीय, सरदार पटेल आदि राष्ट्रनेता आपके सम्पर्क मे आये ।

आप प्रखर वक्ता और असाधारण वाग्मी महापुरुष थे । 'जवाहर किरणावली' नाम से कई भागो मे प्रकाशित आपका प्रेरणादायी विशाल साहित्य राष्ट्र की अमूल्य निधि है । वह ओज, शक्ति और सस्कार-निर्माण का जीवन्त साहित्य है । इस माहित्य से प्रेरणा पाकर हजारो लोगो ने अपने जीवन का उत्थान किया है । ऐसे महान् ज्योतिर्धर आचार्य का साहित्य केवल जैन समाज की ही मम्पत्ति नही है, उसे विश्व-मानव तक पहुचाना हमारा पुनीत कर्तव्य है ।

इसी भावना से प्रेरित होकर जन्म-शताब्दी-वर्ष मे हमने आचार्य श्री की प्रेरणादायी जीवनी तथा धर्म, समाज, राष्ट्रीयता, शिक्षा, नारी-जागरण जैसे महत्त्वपूर्ण विषयो पर प्रकट किये गये, उनके विचारो को सुगम पुस्तकमाला के रूप मे जन-जन तक पहुचाने का निर्णय लिया है । प्रस्तुत पुस्तक उसी योजना का एक अग है । इमी योजना के अन्तर्गत अन्य भाषाओ मे भी कतिपय पुस्तको का प्रकाशन विचाराधीन है ।

इस प्रकाशन-योजना को मूर्तरूप देने हेतु अखिल भारतीय स्तर पर सघ के अधीन गत वर्ष "श्री जवाहर साहित्य

प्रकाशन निधि" स्थापित करने का निर्णय किया गया था। निर्णय के क्रियान्वयन मे श्रीयुत् जुगराजजी सा धोका, मद्रास की प्रेरणा एव सक्रिय सहयोग विशेप उल्लेखनीय एव उपयोगी रहे। सघ इसके लिए उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

इस योजना की क्रियान्विति मे योजना के सयोजक-सम्पादक डॉ० नरेन्द्र भानावत व अन्य विद्वान् लेखको का जो आत्मीयतापूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं।

आशा है, यह सुगम पुस्तकमाला पाठको के चरित्र-निर्माण एव वैचारिक उन्नयन मे विशेष प्रेरक सिद्ध होगी।

गुमानमल चोरड़िया — अध्यक्ष

भवरलाल कोठारी — मन्त्री

श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

सम्पादकीय

भारतीय धर्म और दर्शन के इतिहास का यह एक रोचक तथ्य है कि जैन-परम्परा अविच्छिन्न रूप मे अद्यावधि चली आ रही है। इसी गौरवमयी परम्परा मे आज से १०० वर्ष पूर्व सयम, साधना एव ज्ञानज्योति को प्रज्वलित करने वाले युग-प्रवर्तक क्रान्तदर्शी आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० का जन्म हुआ। आपने धर्म को आत्मा का प्रकृत स्वभाव माना और आत्मकल्याण के साथ-साथ लोक-कल्याण व स्वस्थ समाज रचना का बुनियादी आधार मानते हुए युगीन सन्दर्भों मे उसे व्याख्यायित किया। इससे धर्म का तेजस्वी रूप प्रकट हुआ और समाज तथा राष्ट्र को समानता तथा स्वतत्रता के पुनीत पथ पर निरन्तर आगे बढते रहने की प्रेरणा मिली।

यह बडी प्रसन्नता की बात है कि ऐसे महान् प्रतापी ज्योतिर्धर आचार्य का 'जन्म-शताब्दी महोत्सव' अखिल भारतीय स्तर पर तप, त्यागपूर्वक मनाया जा रहा है और इस उपलक्ष्य मे श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन सघ ने आचार्य श्री के जीवन-प्रसगो और उपदेशो से सर्वसाधारण को परिचित कराने के लिए 'श्रीमद् जवाहराचार्य सुगम पुस्तकमाला' योजना के अन्तर्गत कतिपय पुस्तकें प्रकाशित करने का निश्चय किया

है। इसी योजना के अन्तर्गत यह पुस्तक पाठको के कर-कमलो मे सौंपते हुए हमे आनन्द की अनुभूति हो रही है।

इस पुस्तक मे आचार्य श्री के विशाल प्रवचन-साहित्य-सागर से सूक्ति रूपी मुक्ताकणो को चुनकर एक विशेष क्रम मे उन्हें पिरोने का प्रयत्न किया गया है। सूक्तियो मे जीवन की यथार्थ परिस्थितियो का मार्मिक अनुभव व्यजित होता है। वे एक प्रकार से आत्म-अनुभूतियां होती हैं। नित्य प्रति के व्यवहार मे जिन वातो से लाभ उठाया जाता है, उन्ही वातो को सूक्तिकार मार्मिक और हृदयग्राही ढग से कहता है जिससे वे जन-साधारण के मन मे सहज रूप से पैठ जाती है। सूक्तिकार का लक्ष्य पाठक का मनोरजन करना नही, वल्कि इहलौकिक और पारलौकिक जीवन का परिमार्जन एव परि-शोधन करना होता है। वह मानव-प्रकृति को उसके विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक सन्दर्भों मे समझता, वूझता और परखता है। जव वह 'समझ' अनुभूति की उष्मा मे 'प्रकाश' मे रूपान्तरित होती है, तव निष्कर्ष—नवनीत के रूप मे जो कुछ सामने आता है, वह सूक्ति वनकर। ऐसी सूक्तियो मे जीवन भर के कितने ही अनु-भवो का अमृत सिर्फ एक विन्दु मे ही उडेल दिया जाता है।

आचार्य श्री जवाहरलालजी म० एक क्रान्तद्रष्टा, युग-प्रवर्तक आचार्य थे। समय की नव्ज पहचानने मे वे वडे दक्ष

थे। अपने आत्मस्पर्शी अनुभव, मौलिक चिन्तन और व्यापक ज्ञानाराधन के धरातल से जब वे उद्बोधन देते थे तब उनकी अमृतवाणी से बीच-बीच मे सूक्ति रूपी मोती सहसा बरस पडते थे। इन मोतियो की भगिमा और विच्छित्ति विविधरूपा है। कही आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार की परम आनन्दानुभूति है तो कही प्रकृति और विराट् ब्रह्माण्ड की दिव्य सौन्दर्यानुभूति, कही परम्परागत मूल्यो को सस्कारित करने का निर्देश है तो कही नवीन जीवन-मूल्यो के निर्माण की प्रेरणा, कही समाज मे व्याप्त कुरीतियो पर कुठाराघात है तो कही सुषुप्त आत्मा को जागृत करने का शखनाद। सक्षेप मे ये सूक्तिया एक ओर देशकाल की सीमा से परे शाश्वत जीवन-सत्यो को व्यजित करती हैं तो दूसरी ओर अपने परिवेश के प्रति सचेत और जागरूक बने रहने की अन्तर्दृष्टि भी विकसित करती हैं।

इस पुस्तक मे सकलित सूक्तियो को सुविधा की दृष्टि से १०८ विषयो मे वर्गीकृत किया गया है। प्रत्येक विषय से सम्बद्ध सूक्तियो को अलग-अलग सख्यांकित किया गया है। इस प्रकार सभी विषयो से सम्बद्ध सूक्तियो की कुल सख्या १०२८ है।

आचार्य श्री की बहुआयामी विचारधारा और उसके माध्यम से उनके तेजस्वी व्यक्तित्व को समझने मे ये सूक्तियाँ

जहाँ बडी सहायक हैं, वही जीवन-यात्रा मे इनसे विशेष स्फूर्ति, गति और शक्ति प्राप्त की जा सकती है।

आशा है, इस पुस्तक मे सकलित सूक्तियाँ अन्धकारपूर्ण क्षणो मे हमारे लिए प्रकाश-किरणो का कार्य करेंगी और इनके आलोक मे हमारी जीवन-यात्रा सुखप्रद, मागलिक और निरापद बन सकेगी। इसी भावना के साथ—

नरेन्द्र भानावत
कन्हैयालाल लोढ़ा

१ जनवरी, १९७७
जयपुर (राजस्थान)

अनुक्रमणिका

परिशिष्ट

की खोज आत्मा मे तन्मय होने पर समाप्त हो जाती है।

१०. ईश्वर को ढूंढने के लिए इधर-उधर मत भटको। पृथ्वीतल बहुत विशाल है और तुम्हारे पास छोटे-छोटे दो पैर हैं। इनके सहारे तुम कहा-कहा पहुँच सकोगे? फिर इतना समय भी तुम्हारे पास कहाँ है? मन को शान्त और स्वस्थ बनाओ। फिर देखोगे तो ईश्वर तुम्हारे ही निकट-निकटतर दिखाई देगा।

११. ईश्वर के विषय मे अगर सुदृढ विश्वास हो गया तो वह सभी जगह मिलेगा। विश्वास न हुआ तो कही नही मिलेगा।

१२. विश्व के कल्याण मे ही परमेश्वर का वास है। ससार के कल्याण की आन्तरिक कामना ही परमेश्वर का दर्शन कराती है।

१३. दिल परमात्मा का घर है। परमात्मा मिलेगा तो दिल मे ही मिलेगा। दिल मे न मिला तो कही नही मिलेगा।

१४ चर्म-चक्षुओ से परमात्मा दिखाई नही देता तो इससे क्या हुआ, चर्म-चक्षुओ के सिवाय हृदय-

ओर दृष्टि दौडाओ। बाहर कही परमात्मा नही है। वह आत्मा मे ही है, वल्कि आत्मा ही है।

५. तुम्हारी आत्मा पर आवरण न हो तो तुम्हारे आत्मा मे और परमात्मा मे कुछ भी अन्तर नही है। जिस क्षण कर्म आवरण हट जाएगे उसी क्षण तुम्हे आत्मा मे ही परमात्मा की परम ज्योति अनुभव मे आने लगेगी।

६ जव कर्मों का क्षय होना सभव है तो उसके साधनो का प्रयोग करके उन्हे क्षय करना और आत्मा के विशुद्धतम स्वरूप को प्राप्त करना मानव का परम कर्त्तव्य होना चाहिए।

७. आत्मा जव अपने समस्त पापो को नष्ट कर डालता है, उसकी समस्त औपाधिक विकृतिया नष्ट हो जाती हैं और जव वह अपने शुद्ध स्वभाव मे आ जाता है, तव आत्मा ही परमात्मा या ईश्वर वन जाता है।

८ ईश्वर जव मिलेगा तव अपने आप मे ही मिलेगा।

९. जिसने आत्मा का असली स्वरूप समझ लिया है, उसने परमात्मा पा लिया है। परमात्मा

१६ जो पापो का हरण-विनाश करता है, वह हरि या हर कहलाना है।

२० जो सत्य है, शिव यानी कल्याणमय है और सुन्दर है, वह हर या शिव है।

२१. प्यास शान्त करने के लिए चाहे जल पिया जाय, चाहे सलिल पिया जाय और चाहे पानी पिया जाय—सब एक ही बात है। इसी प्रकार पापनाश करने के लिए चाहे किसी भी नाम से परमात्मा की प्रार्थना की जाय, उसमे भेद नही है—क्योकि नाम भेद से वस्तु मे भेद नही होता।

२२ जिस प्रकार सूर्य के सामने अन्धकार नही रहता, इसी प्रकार परमात्मा का साक्षात्कार होने पर आत्मा मे कोई भूल शेष नही रहती।

२३. आत्मा को परमात्मपद पर पहुँचाने का उपाय है परमात्मा के ध्यान मे आत्मा का तल्लीन हो जाना।

२४. आत्मा जब परमात्मा के स्वरूप मे निमग्न हो जाता है तब वह स्वय परमात्मा बन जाता है।

चक्षु भी तो है और उससे परोक्ष वस्तु जानी भी जाती है। उसी से परमात्मा को देखो।

१५. परमात्मा अनन्त सूर्यों से भी अधिक तेजस्वी है। बड़े-से-वडा पापी परमात्मा को बुलाता है तव भी वह उसके हृदय मे वास करने के लिए आ जाता है। उसका विरद ही ऐसा है।

१६ परमात्मा किसी के साथ भेदभाव या पक्षपात नही करता। वह सभी के हृदय-मंदिर मे वसने आ जाता है। वात सिर्फ इतनी है कि परमात्मा को वसाने के लिए काम-वासनाओ को तिलांजलि देना होगा, दोनों का एक साथ समावेश होना सभव नही है।

१७. जिन्होने परमात्मा के स्वरूप को भलीभांति समझ लिया है, वे ज्ञानी पुरुष यह मानते हैं कि परमात्मा सभी का है, सभी के लिए है। परमात्मा किसी एक का नही और जो किसी एक का है वह परमात्मा नही है।

१८. किसी का कोई भी प्रयत्न जैसे आकाश को सार्वजनिक होने से नही रोक सकता, उसी प्रकार वह ईश्वर को भी साम्प्रदायिकता के दायरे मे वन्द नही कर सकता।

१६ जो पापो का हरण-विनाश करता है, वह हरि या हर कहलाता है।

२० जो सत्य है, शिव यानी कल्याणमय है और सुन्दर है, वह हर या शिव है।

२१. प्यास शान्त करने के लिए चाहे जल पिया जाय, चाहे सलिल पिया जाय और चाहे पानी पिया जाय—सब एक ही बात है। इसी प्रकार पापनाश करने के लिए चाहे किसी भी नाम से परमात्मा की प्रार्थना की जाय, उसमे भेद नही है—क्योकि नाम भेद से वस्तु मे भेद नही होता।

२२ जिस प्रकार सूर्य के सामने अन्धकार नही रहता, इसी प्रकार परमात्मा का साक्षात्कार होने पर आत्मा मे कोई भूल शेष नही रहती।

२३. आत्मा को परमात्मपद पर पहुँचाने का उपाय है परमात्मा के ध्यान मे आत्मा का तल्लीन हो जाना।

२४. आत्मा जब परमात्मा के स्वरूप मे निमग्न हो जाता है तब वह स्वय परमात्मा बन जाता है।

२५. ईश्वर का ध्यान करने से आत्मा स्वयं ईश्वर बन जाता है। पर जब तक ईश्वरत्व की अनुभूति नही होती तब तक प्राणियो को ही ईश्वर के स्थान पर स्थापित कर लो। ससार के प्राणियो को आत्मा के समान समझने से दृष्टि ऐसी निर्मल बन जायेगी कि ईश्वर को भी देखने लगोगे और अन्त मे स्वय ईश्वर बन जाओगे।

२६. ससार सम्बन्धी विचारो से बचने के लिए और आत्मा को परमात्मा के स्वरूप मे परिणत करने के लिए, उपाधि का त्याग करो। निरन्तर चिन्तन, मनन, ध्यानादि उपायो के द्वारा आत्मा को आगे बढाओ। आत्मा की जो अनन्त शक्तियाँ सुप्त अवस्था में पडी हुई हैं, उन्हे जगाओ। ऐसा करने पर ईश्वर नजर आएगा।

२७. परमात्मा के बल के सामने विश्व का सम्पूर्ण बल किसी गिनती मे नही।

२८. ईश्वरीय बल के समक्ष ससार का बल तुच्छ है, त्याज्य है और हीरे के मुकाबिले ककर के समान है। सच्चा वीर पुरुष हीरे के समान बल को प्राप्त करने

के लिए ककर के समान बल का त्याग किये विना नही रह सकता।

२६. साकल की एक कडी खीचने से जैसे सारी साकल खिच आती है, उसी प्रकार परमात्मा की कोई भी शक्ति अपने मे खीचने से समस्त शक्तियाँ खिच आती है।

३० जब तुम परमात्मा से संसार की कोई वस्तु मागते हो तो समझो कि दु ख मागते हो।

(२) प्रार्थना

१ परमात्मा की प्राप्ति का सरल मार्ग परमात्मा की प्रार्थना करना है। अनन्त भाव से परमात्मा की प्रार्थना या भक्ति करने से परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है।

२ आत्मोत्सर्ग के विना सच्ची प्रार्थना नही हो सकती।

३. अन्तःकरण से निकली हुई प्रार्थना से ही अन्तरग की शुद्धि होती है।

४. जब प्रार्थना अन्तर से उद्भूत होती है तो अन्त करण प्रार्थना के अमृत-रस मे सराबोर हो जाता है।

५. काँच पर प्रतिबिम्ब पड़े विना नही रहता, इसी प्रकार भाव-प्रार्थना करने वाले प्रार्थी के निर्मल हृदय पर परमात्मा का प्रतिबिम्ब पड़े विना नही रहता।

६ प्रार्थना का सम्बन्ध भाषा से या जिह्वा से नही है। जिह्वा-स्पर्शी भाषा तो शुक भी बोल लेता है। मगर वह भाषा केवल प्रदर्शन की वस्तु है। निर्मल अन्तःकरण मे भगवान् के प्रति उत्कृष्ट प्रीति भावना जब प्रबल हो उठती है, तब स्वयमेव जिह्वा स्तवन की भाषा का उच्चारण करने लगती है। स्तवन के उस उच्चारण मे हृदय का रस मिला होता है। ऐसा स्तवन ही फलदायी होता है।

७. विवाह के अवसर पर लड़के की माता को गीत गाने मे जो आनन्द आता है, उससे कई गुणा

आनन्द आन्तरिक प्रेम के साथ परमात्मा की प्रार्थना करने वाले को होता है।

८ परमात्मा 'दीन-दयालु' है। इसलिए उसकी प्रार्थना करने वाले को 'दीन' बनना होगा। 'दीन' बने बिना 'दीन-दयालु' की दया प्राप्त नही की जा सकती।

९ परमात्मा की प्रार्थना किसी भी स्थान पर और किसी भी परिस्थिति मे की जा सकती है। पर प्रार्थना मे आत्म-समर्पण की अनिवार्य आवश्यकता रहती है।

१०. प्रार्थना करने वाला अपनी व्यक्तिगत सत्ता को भूल जाता है। वह परमात्मा के साथ अपना तादात्म्य-सा स्थापित कर लेता है।

११ मन, वाणी और क्रिया को शुद्ध करके जब परमात्मा की प्रार्थना की जाती है तो शान्ति प्राप्त होती ही है।

१२ प्रार्थना की अद्‌भुत शक्ति पर जिसे विश्वास है, उसे प्रार्थना के द्वारा अपूर्व वस्तु प्राप्त होती है।

१३ विना विश्वास के की जाने वाली प्रार्थना ढोंग है।

१४. प्रार्थना का विषय आध्यात्मिक है। इस आध्यात्मिक विचार के सामने तर्क-वितर्क का कोई मूल्य नही है। यह विश्वास का विषय है। हृदय की वस्तु का मस्तिष्क द्वारा निरीक्षण-परीक्षण नही किया जा सकता।

१५. विना प्रेम के, ऊपरी भाव से गाई जाने वाली ईश्वर की स्तुति से कदाचित सगीत का लाभ हो सकता है, पर आध्यात्मिक लाभ नही हो सकता।

१६ स्तुति तन्मयता के विना, तोता का पाठ है।

१७ जव किसी सासारिक पदार्थ की इच्छा को पूर्ण करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना की जाती है, तव वह सच्ची प्रार्थना नही वरन् ऊपरी ढोग वन जाती है।

१८. सासारिक स्वार्थ की सिद्धि के लिए की जाने वाली प्रार्थना सच्ची शान्ति नही पहुँचा सकती।

१९. तृष्णा की पूर्ति के लिए उद्योग करन
आकाश को नापने के समान निष्फल चेष्टा है। ऐस
जानकर ज्ञानी पुरुष आशाओ की पूर्ति करने के लिए
परमात्मा की प्रार्थना नही करते, वरन् आशा का नाश
करने के लिए नम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं।

२०. अगर तुम आशा-तृष्णा को नष्ट करने के
लिए अन्त करण मे पूर्ण नि स्पृह वृत्ति जागृत करने के
लिए ईश-प्रार्थना करोगे तो ससार के पदार्थ–जिनके तुम
अधिकारी हो—तुम्हे मिलेंगे ही, साथ ही शाति का परम
सुख भी प्राप्त होगा।

२१ प्रार्थना मे अपने दुर्गुणो को छिपाना नही
चाहिए किन्तु प्रकट करना चाहिए। ऐसा करने से
आत्मा एक दिन परमात्मा से साक्षात्कार करने मे समर्थ
हो सकेगा।

२२. नमस्कार के रूप मे सर्वस्व समर्पण कर
देने वाला आराधक न प्रशसा चाहता है, न कीर्ति
चाहता है, न अहकार खरीदता है, न गौरव मानता है
वह हृदय, मस्तिष्क, बुद्धि और अहकार के भार को
अपने आराध्य के आगे विसर्जित कर देता है।

२३. प्रार्थना करने वाले को संसार के दु:ख किस प्रकार जागृत कर देते हैं, यह बात प्रार्थना करने वाला ही जानता है। जो मनुष्य संसार के प्रपंचों मे ही रचापचा है, उसे यह तथ्य मालूम नहीं हो सकता।

(३) भक्ति

१. परमात्मा से भेंट करने का सीधा मार्ग उसका भजन करना है।

२. भक्त के लिए परमात्मा का आकर्षण वैसा ही है जैसे लोहे के लिए चुम्बक का।

३. परमात्मा के भजन का सहारा लेकर मन को एकाग्र करने से चित्त की चंचलता दूर होगी।

४. जिसकी निष्ठा परमात्मा मे प्रगाढ होगी उसके सामने परमात्मा का ही सदा आदर्श बना रहेग और वह उन्ही के आचार-विचार का अनुकरण करेगा इससे उसे परमानन्द की प्राप्ति हो सकेगी।

५. भगवान् का नाम लेना भजन है अवश्य

लेकिन भजन का खास अर्थ ईश्वरीय तत्त्व की उपासना करना है।

६. परमात्मा से भेंट करने का सरल और सुगम मार्ग भजन है। यह मार्ग सबके लिए खुला है। इस मार्ग मे सब ऊपरी भेद मिट जाते हैं।

७ ईश्वर की आज्ञा की अवहेलना करके उसके नाम की माला जप लेने मात्र से कल्याण नही हो सकता।

८. जैसे पनिहारी हँसती-बोलती जाती है पर सिर पर रक्खी खेप को नही भूलती, इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि पुरुष सासारिक कार्य करता हुआ भी भगवान् को नही भूलता।

९ विषय-वासना होने पर भक्ति नही रह सकती। परमात्मा की भक्ति और विषय-वासना एक साथ नही निभ सकती है।

१०. परमात्मा का सच्चा भक्त वही है जिसने विषय-वासना का निरोध कर दिया है। परमात्मा की भक्ति की अभिलाषा रखने वाले के लिए ऐसे व्यक्ति का

संसर्ग भी त्याज्य है, जो विषय-वासना को प्रधानता देता है।

११. जब तक अहकार है, अभिमान है, तब तक भक्ति नही हो सकती।

१२. अहकार की छाया मे प्रेम का अकुर नही उगता। अहकार मे अपने प्रति घना आकर्षण है, आग्रह है और प्रेम मे घना उत्सर्ग चाहिए। दोनो भाव परस्पर विरोधी हैं। एक मे मनुष्य अपने आपको पकड कर बैठता है, अपना आपा खोना नही चाहता और दूसरे मे आपा खोना पडता है। इस स्थिति मे अहकार और प्रेम या भक्ति दोनो एक जगह कैसे रहेगे ?

१३ सच्चा भक्त वही है जो माया के फन्दे मे न फसे। माया बडी छलनी है। उसने चिरकाल से नही, अनादिकाल से जीवात्मा को भुलावे मे डाल रखा है।

१४ अगर आपके हृदय मे इस प्रकार की भावना बद्धमूल हो गई कि मनुष्य ईश्वर का प्रतिनिधि है और उसके प्रति दुर्व्यवहार करना परमात्मा के प्रति दुर्व्यवहार करना है तो आप थोडे ही दिनो मे देखेंगे कि आपके अन्त.करण मे अपूर्व भक्तिभाव पैदा होगा और आप परमात्मा के सच्चे उपासक बन जायेंगे।

१५ परमात्मा के प्रति सच्ची प्रीति जुडने के वाद मन दुर्गुणो और पापो की ओर प्रवृत्त नही होता ।

१६. कुकर्म जहर से बढकर हैं, जब इनकी ओर आपका चित्त खिंचने लगे तब आप भगवान् का स्मरण किया करें । ऐसा करने से आपका चित्त स्वस्थ होगा, विकार हट जायेगा और पवित्र भावना उत्पन्न होगी ।

१७ भक्त ससार मे रहता हुआ भी उसके खारेपन मे नही रहता । वह समुद्र मे मछली की भाति मिठास मे ही रहता है ।

१८ जैसे सफेद कपडे का दाग जल्दी दिखाई देने लगता है उसी प्रकार जिसमे थोडा पाप है, वह अपने आपको बडा पापी मानता है और अपना पाप परमात्मा के सामने पेश कर देता है ।

१९ जिसे नमस्कार किया जाता है वह वडा है । उस वड़े को अगर सच्चे हृदय से नमस्कार किया है तो उसके लिए, उसके आदर्श के लिए, सिर दे देना भी मुश्किल वात नही होनी चाहिए ।

२०. सच्चा माला फिराने वाला भक्त वह है

जो अपने भाइयों के कल्याण की कामना करता है और अपने सुख की अभिलाषा का त्याग कर देता है।

२१. भगवद्भक्ति की प्राथमिक भूमिका भूत-मात्र को अपना भाई मानकर उसके प्रति सहानुभूति रखना है।

२२. प्राणीमात्र के प्रति आत्म-भाव रखकर भगवान् की स्तुति करने से कल्याण का द्वार खुलता है।

२३ तू जैसा है वैसा ही परमात्मा की शरण मे जा। जैसे कमल के पत्ते का सयोग पाकर जल की साधारण बूंद भी मोती की कान्ति पा जाती है, उसी प्रकार तू परमात्मा का संयोग पाकर असाधारण वन जायेगा।

२४. जैसा मैं हूँ, वैसे ही अन्य सब प्राणी हैं, इस प्रकार इतर प्राणियो को अपने समान समझने से शनै शनै. ईश्वर का साक्षात्कार होगा, परमात्मा तत्त्व की उपलब्धि होगी, आत्मा स्वय उस शुद्ध स्थिति पर पहुँच जायेगा।

२५. आकाश अनन्त है। वायुयान पर विहार

करने वाले भी आकाश का अन्त नही पा सकते, तो बेचारे पक्षियो की क्या चलाई ? पक्षी दाना चुगने पृथ्वी पर आते अवश्य हैं पर उनका आधार आकाश ही है। इसी प्रकार ससार मे रहते हुए भी, भक्तो का आधार परमात्मा है।

२६ भोजन करने वाले को थोड़ा-बहुत भजन भी करना चाहिये।

२७ परमात्मा की शरण लेने पर विपत्ति मनुष्य को पीडित नही कर सकती, रुला नही सकती, वरन् रोते को धैर्य मिलता है, सान्त्वना मिलती है और सहने की शक्ति मिलती है।

२८ जिसके अन्त.करण मे भगवद्भक्ति का अखण्ड स्रोत बहता है वह पुरुष वड़ा भाग्यशाली है। उसके लिए तीन लोक की सम्पदा और निखिल विश्व का राज्य भी तुच्छ है।

२९ जैसे मामूली वस्तु भी नदी के प्रवाह मे बहती हुई समुद्र मे मिल जाती है, उसी प्रकार भक्ति के प्रवाह मे बहने वाला मनुष्य ईश्वर मे मिल जाता है अर्थात् स्वय परमात्मा वन जाता है।

३०. भक्ति वह अलौकिक रसायन है जिसके

द्वारा नर नारायण हो जाता है। भक्ति से हृदय में अपूर्व शान्ति और असाधारण सुख प्राप्त होता है।

३१. जिसमे भक्ति है उसमे शक्ति आये बिना नही रहेगी।

३२. जैसे किसान को धान्य के साथ घास-भूसा भी मिल जाता है, उसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना से ईश-कृपा के साथ सांसारिक वस्तुएं भी आप ही मिल जाती हैं।

३३. मनुष्य जन्म का मूल्य समझो और एक क्षण भी व्यर्थ न जाने देकर परमात्मा की भक्ति मे समय का सदुपयोग करो। ऐसा करने से तुम्हारा जीवन सार्थक होगा और तुम्हारी आत्मा ईश्वरमय बन जायेगी।

३४. परमात्मा की कृपा से मनुष्य जीवन प्राप्त हुआ है, अतः उसका गुण-गान करो।

(४) अध्यात्म

१. कोरे व्यावहारिक ज्ञान से आत्मा का

कल्याण नही हो सकता। आत्मा के कल्याण के लिए आध्यात्मिक ज्ञान अपेक्षित है।

२. आध्यात्मिक विचार के सामने तर्क-वितर्क का कोई मूल्य नही है। वह विश्वास का विषय है। हृदय की वस्तु का मस्तिष्क द्वारा निरीक्षण-परीक्षण नही किया जा सकता।

३. जो अध्यात्म-निष्ठ होता है वह दूसरों के हित मे अपना हित मानता है।

४ यह भ्रम दूर कर देना चाहिए कि आध्यात्मिकता के साथ जीवन नही निभ सकता।

५. आध्यात्मिकता वहा सहज ही आ जाती है जहाँ पर-हित के लिए प्राण तक अर्पण कर देने की उदारता है।

(५) आत्मा

१. जो मनुष्य घड़ी को देखकर उसके कारीगर को नही पहचानता वह मूर्ख गिना जाता है। इसी प्रकार जो शरीर को धारण करके इसमे विराजमान आत्मा

को नही पहचानता और न पहचानने का प्रयत्न करता है उसकी समस्त विद्या अविद्या है। उसके सब काम खटपट रूप हैं।

२. इन दृश्यमान बाह्य पदार्थों मे ही विश्व की परिसमाप्ति नही हो जाती। इन भौतिक पदार्थों से परे एक वस्तु और भी विश्व मे विद्यमान है और वह आत्मा है। वह आत्मा शाश्वत है—सनातन है।

३ आत्मा मे जो गुण वैभाविक हैं, जो उपाधि-जन्य हैं अर्थात् काल, क्षेत्र, या पर्याय आदि पर-निमित्त से उत्पन्न हुए हैं, जो स्वाभाविक नही हैं, वे गुण बदल जाते हैं, परन्तु आत्मा के स्वाभाविक गुणों मे परिवर्तन नही होता।

४. बुद्धि की दौड़ आत्मा की परछाई तक नही पा सकती। आत्मा की शोध, बुद्धि की सामर्थ्य से परे है।

५ आत्मा अमर और अविनाशी है, जबकि शरीर नाशवान् है। आत्मा को शारीरिक मोह मे फसा-कर गिराना उचित नही।

६ तुम्हारा आत्मा ही तुम्हारे काम आयेगा।

विश्व का कोई भी पदार्थ तुम्हारे काम नही आ सकता। फिर भी न जाने क्यो मनुष्य दुनिया की वस्तुओ को, आत्मा बेचकर, खरीदने मे ही अपना कल्याण मानता है।

७ अंगूठी का मूल्य उसकी बनावट से नही वरन् सोने से निर्धारित होता है, इसी प्रकार जीव किसी भी योनि मे क्यो न हो, उसका मूल्य अन्य सभी जीवो के बराबर है, क्योकि सब जीव स्वरूप से समान हैं।

८ आत्मा स्वभावत ऊर्ध्वगामी स्वभाव वाला है। धर्म उसका स्वरूप है।

(६) आत्म-बल

१ आत्म-बल मे अद्भुत शक्ति है। इस बल के सामने ससार का कोई भी बल नही टिक सकता। इसके विपरीत, जिसमे आत्म-बल का सर्वथा अभाव है वह अन्यान्य बलो का अवलम्बन करके भी कृतकार्य नही हो सकता।

२ मनुष्य इधर-उधर भटकता है—भौतिक पदार्थों को जुटाकर बलशाली बनना चाहता है, लेकिन

वह वल किस काम आएगा ? अगर आंख मे शक्ति नही है तो चश्मा लगाने से क्या होगा ?

३. तुम्हारे भीतर जो शक्ति विद्यमान है वह साधारण नही है। उस शक्ति के सामने विश्व की शक्ति टिक नही सकती। आवश्यकता है उसे जानने की, उस पर श्रद्धा रखने की।

४. दृढ मनोवल के साथ किसी काम मे जुट पडने पर कठिनाइयां अपने आप हल हो जाती हैं और आत्मा के वढते हुए वल के सामने उन्हे परास्त होना पड़ता है।

५ शरीर की चर्वी वढ जाना शक्ति का प्रतीक नही। मनोवल का वढ़ जाना और उसे कावू मे रखना ही सच्ची शक्ति है।

६. परमात्मा की शरण मे चले जाओ। परमात्मा से जो वल प्राप्त होगा वही आत्म-वल होगा। जव तक तुम अपने वल (भौतिक वल) पर निर्भर रहोगे तव तक आत्म-वल प्राप्त न हो सकेगा।

७. आत्म-वल को प्रगटाने के लिए तुम्हें आत्मा

के विकार दूर करने पड़ेंगे। आत्मा के विकार ज्यो-ज्यों हटते जाएगे त्यो-त्यो तुम्हारी आत्म-शक्ति का आविर्भाव होता चलेगा।

८ एक म्यान मे दो तलवार नही समा सकती। इसी प्रकार जब तक आत्मा मे माया-मृषा की मलिनता घुसी है, तब तक उसमे राम बल या आत्मिक सामर्थ्य प्रकट नही हो सकता।

९. जिसे तुम अपनी वस्तु कहते हो, उस सबका परित्याग कर दो, सबका यज्ञ कर डालो। इस सब ऊपरी बल से जब विमुख हो जाओगे तो तुम्हारी अन्तरात्मा में एक अपूर्व ओज प्रकाशित होगा। वही ओज आत्म-बल होगा।

१० आत्म-बली को प्रकृति स्वयं सहायता पहुँचाती है।

११. जब आप मे फूल को छडो बनाने की क्षमता है तो फिर उसे नागिन क्यो बनाते हैं? आपकी आत्मा मे जो शक्ति है वह अनन्त पुण्य का निर्माण कर सकती है, फिर उसे आप घोर पाप के निर्माण मे क्यो लगा रहे हैं?

१२. आत्म-बलशाली के सामने समस्त शक्तियाँ हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं।

१३. आत्म-बली के सामने अग्नि ठडी हो जाती है, शस्त्र निकम्मा हो जाता है और विष अमृत वन जाता है।

(७) भौतिकवाद-अध्यात्मवाद

१. भौतिकवाद को समझने पर ही अध्यात्मवाद को और अध्यात्मवाद को समझ लेने पर ही भौतिकवाद को पूरी तरह समझा जा सकता है।

२. अध्यात्मवाद के आधार पर भौतिकवाद टिका हुआ है और भौतिकवाद के आधार पर आध्यात्मिकवाद की दीवाल खडी है। सूक्ष्म के आधार पर स्थूल और स्थूल के आधार पर सूक्ष्म अवस्थित है।

३ आत्मा मे जवर्दस्त शक्ति है। वह ससार मे उथल-पुथल कर सकती है। जिस विज्ञान ने आज संसार को कुछ का कुछ वना दिया है, उसके मूल मे आत्मा की ही शक्ति है। आत्मा न हो तो ससार का काम एक क्षण भी नही चल सकता क्योकि वह स्वय जड है।

(८) विज्ञान

१ आज विज्ञान का दुरुपयोग किया जा रहा है। अगर विज्ञान का सदुपयोग किया जाय तो वह धर्म और सस्कृति की रक्षा करने मे विशेष सहायक बन सकता है।

२. जो विज्ञान मनुष्य की मनुष्यता नही बढ़ाता, वल्कि उसे घटाता है और पशुता की वृद्धि करता है, वह मानव-जाति के लिए हितकर नही हो सकता।

(९) गुरु

१ सच्चा गुरु वह है जो शिष्य बनाने के लिए किसी को झूठा प्रलोभन नही देता।

२ पापी, दुष्ट और दुरात्मा को भी अपने समान मानकर, उसके भी उद्धार की भावना रखने वाला ही सद्गुरु है।

(१०) योगी-महात्मा

१. वही सच्चा योगी है जो प्राणिमात्र को अपने समान समझता है, उन्हे आत्मोपम्य बुद्धि से देखता है।

२. जो काम आदि विकारों को जीत लेता है वह महात्मा, महापुरुष है।

३. महापुरुष अपने आचरण का आदर्श जगत् के हित के लिए उत्तराधिकार के रूप मे छोड़ गये हैं।

४. धर्मात्मा चाहे सुख मे हो, चाहे दु ख मे हो, धर्मात्मा ही रहता है।

(११) धर्म-स्वरूप

१. धर्म प्राकृतिक है। वस्तु का स्वभाव है। ऐसी स्थिति मे धर्म मे भेदभाव की गुंजाइश कहाँ ?

२. अहिंसा, सयम और तप रूप धर्म सदा मगलमय है—कल्याणकारी है। जो लोग जीवन मे धर्म को आवश्यक नही समझते, उन्होने या तो धर्म का स्वरूप नही समझा है या धर्म-भ्रम को ही धर्म समझ लिया है।

३. वही बात हमारे काम की है जो धर्म के साथ संगत है।

४. धर्माचरण का फल आत्म-शुद्धि है। उसे

भूलकर जो धन-धान्य आदि भोगोपभोग की सामग्री की प्राप्ति मे ही धर्म की सफलता मानता है वह मूढ है।

५ सामायिक मे बैठ जाने मात्र से धर्म नही होता। रात-दिन की शुभ-अशुभ प्रवृत्तियो से ही पुण्य-पाप का हिसाब होता है।

६. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को ग्रहण न किया जाय तो भगवान् के साक्षात् मिल जाने पर भी कोई प्रयोजन सिद्ध नही होता।

७ पाप से पाप का मुकावला करने पर पापो की परम्परा अक्षय हो जायेगी। पाप का क्षय धर्म से हो सकता है। धर्म से ही पाप का प्रतीकार करना हिता वह है।

८ हिंसा अगर अधर्म है तो हिंसक उपायो से किसी को धार्मिक कैसे वनाया जा सकता है? इसी प्रकार लोभ पाप है तो लोभ मे फंसा कर दूसरे को धार्मिक नही वरन् पापी ही बनाया जा सकता है। अतएव धर्मात्मा ऐसे तरीको को व्यवहार मे नही लाता।

९. जहां धर्म के नाम पर खून-खराबी हो, वहाँ

यही समझना चाहिए कि धर्म के नाम पर ढोंग प्रचलित है। सच्चा धर्म अहिंसा और सत्य आदि है। अहिंसा के कारण कही खून-खच्चर नही हो सकता।

१०. लोगो के हृदय विकार से भरे हुए है और जब उन्हे कोई दूसरा आधार नही मिलता तब वे धर्म के नाम पर सिर-फुटावल मचाने लगते हैं। वास्तव मे कोई भी धर्म परस्पर लडने-झगडने या दूसरे को दु ख देने की आज्ञा नही देता। ऐसा होते हुए भी दूसरो को दु:ख देना धर्म सम्बन्धी अज्ञानता को प्रकट करना है।

११. धर्म के नाम पर प्रकट किये जाने वाले भूतकालीन और वर्तमानकालीन अत्याचार और जुल्म धर्म-भ्रम या धर्मान्धता के कारण ही हुए हैं और हो रहे हैं। धर्म तो सदा सर्वदा सर्वतोभद्र ही है। जहां धर्म है वहा अन्याय, अत्याचार नही फटक सकते।

१२. धर्म मे किसी भी प्रकार के पक्षपात को, जातिगत भेदभाव को, ऊंचनीच की कल्पना को, राजा-रक अथवा अमीर-गरीब की भावना को तनिक भी स्थान नही है। धर्म की दृष्टि मे सब समान हैं।

१३. प्रत्येक कार्य को आरम्भ करते समय उसे

धर्म की तराजू पर तोल लो। धर्म इतना अनुदार नही है कि वह आपकी अनिवार्य आवश्यकताओ पर पाबन्दी लगा दे। साथ ही इतना उदार भी नही है कि आपकी प्रत्येक प्रवृत्ति की सराहना करे।

१४ जिस धर्म के नाम पर अन्याय एव अत्याचार होता है वह धर्म ही नही है। वह या तो धर्मभ्रम है या धर्मान्धता है।

१५ अज्ञान और भय-लालच धर्म के कट्टर शत्रु हैं क्योकि धर्म का नाश करने वाला लोकभ्रम अज्ञान और भय से ही उत्पन्न होता है।

१६. धर्म और धर्मभ्रम मे आकाश-पाताल जितना अन्तर है। गधा, सिंह की चमडी लपेट देने पर भी सिंह नही बन सकता। इसी प्रकार धर्मान्धता कभी धर्म नही हो सकती।

१७. धर्मभ्रम और धर्मान्धता को भले ही धर्म का चोगा पहना दिया जाय, लेकिन अन्त मे धर्मभ्रम का क्षय और धर्म की जय हुए बिना नही रह सकती।

१८ जो धर्म मानव के प्रति तिरस्कार उत्पन्न करता है, मनुष्य को मनुष्य से जुदा करना सिखलाता

है, मानव को तुच्छ समभना सिखलाता है वह धर्म नही है। धर्म मे ऐसी बातो के लिए कोई स्थान नही है।

१६. मनुष्य धर्म का पालन करता है सो इसलिए नही कि वह अपने आपको ऊचा ठहराने की कोशिश करे, बल्कि इसलिए कि वह वास्तव मे ऊचा बने।

२०. सच्चा धर्म वही है जो अन्तरतम से उद्भूत होता है। जिस बाह्य क्रिया के साथ मन का मेल नही है, जो सिर्फ परम्परा का पालन करने के लिए की जाती है या प्रतिष्ठा के मोह से की जाती है, वह ठीक फल नही दे सकती।

२१ धर्म के फल की कामना करने से ही धर्म का फल मिलेगा, अन्यथा नही, ऐसा समभना भूल है। कामना करने से तो धर्म का फल तुच्छ हो जाता है और कामना न करने से अनन्त गुणा फल मिलता है।

२२ धार्मिक अनुष्ठान का एकमात्र ध्येय आत्म-शुद्धि ही होना चाहिये। स्वर्ग के सुखो के लिए प्रयत्न मत करो। स्वर्ग के सुखो के लालच मे फंस गये तो मुक्ति से हाथ धो बैठोगे।

२३ निठल्लापन धर्म नही हो सकता। धर्म विवेकपूर्वक कर्त्तव्य पालन मे है।

२४ अपने सम्प्रदाय की रक्षा के लिए जो व्यवहार व खून-खराबी दुरभिनिवेश के वश होकर करते हैं, उससे सम्प्रदाय की रक्षा नही होती, किन्तु उसका पतन होता है, उसकी जड खोखली बनती है।

२५. जो श्रावक अधर्मी के प्रति करुणाशील बनकर, वत्सलता द्वारा अपने धर्म को प्रकाशित करता है। वह सेवा, दान, परोपकार आदि प्रशस्त आचरण के द्वारा अपने धर्म का उद्योत करता है।

२६. कष्ट तो धर्म की कसौटी है। हम मे वास्तव मे धर्म है या नही, इस बात की परीक्षा कष्ट आने पर ही होती है।

२७ धर्म का सम्बन्ध सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन सम्यक्चरित्र के साथ है। जहा इनमे से एक भी नही है, वहां धर्म तत्त्व भी नही है।

२८. मैं थप्पड़ का बदला थप्पड से नही, प्रेम से दूंगा। जिसके अन्तःकरण मे धर्म का वास होगा वह इस प्रकार का विचार करेगा।

२९ जो लोग धर्म के नाम पर थप्पड़ का वदला थप्पड से देते हैं अथवा पर धन और पर स्त्री के अपहरण की चिन्ता मे दिन रात डूबे रहते है, वही लोग धर्म की निन्दा कराते हैं।

३० लोग धर्म-धर्म चिल्लाते हैं, मगर धर्म के इस मौखिक उच्चारण से धर्म नही हो जाता। जीवन मे धर्म मूर्त्त स्वरूप तभी धारण करता है जब अपने सुख का वलिदान करके दूसरो को सुख दिया जाता है।

३१. आज धर्म के विषय मे यही समझा जाता है कि जिससे अष्टसिद्धि और नव निधि प्राप्त हो, वही धर्म है। शास्त्रकारो का कथन यह है कि धर्मश्रद्धा का फल सातावेदनीय के उदय से प्राप्त होने वाले सुखो से विरक्त होना है।

३२ तमाम धर्म मानव धर्म सीखने के साधन हैं। जो धर्म मानव के प्रति तिरस्कार उत्पन्न करता है, मनुष्य को मनुष्य से जुदा करना सिखलाता है, मानव को तुच्छ समझना सिखलाता है, वह धर्म नही है।

३३. लौकिक धर्म से शरीर की और विचार

की शुद्धि होती है और लोकोत्तर धर्म से अन्त करण एवं आत्मा की ।

३४ युगधर्म ही सब कुछ नही है, वरन् शाश्वत धर्म भी है जो जीवन को भूत और भविष्य के साथ जोडता ह । युगधर्म का महत्त्व काल की मर्यादा मे बंधा है पर शाश्वत धर्म सभी प्रकार की सामयिक सीमाओं से मुक्त है ।

(१२) धर्म-माहात्म्य

१. धर्म, मगलकारक ही नही है, साक्षात् मंगल है ।

२ जिसकी बदौलत सदा के लिए सुख मिल सकता है उस धर्म के लिए जरा भी उत्साह न होना, कितने बडे दुर्भाग्य की बात है ।

३. धर्म का मुख्य ध्येय आत्म-विकास करना है । अगर धर्म से आत्मा का विकास न होता तो धर्म की आवश्यकता ही न होती ।

४. धर्म, व्यक्ति और समाज का जीवन है ।

जिन्हे आनन्दमय जीवन पसन्द नही है वे धर्म से दूर रह सकते हैं।

५. धर्म, परलोक मे ही सुख देने वाला नही, इहलोक मे भी कल्याणकारी है।

६. मानव-जीवन यदि मकान के समान है त धर्म उसकी नीव है।

७. धर्म के अभाव मे जीवन, मानव-जीवन न रहकर पाशविक जीवन बन जाता है।

८. जीवन मे धर्म का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है, यहाँ तक कि धर्म के बिना जीवन व्यवहार भी नही चल सकता।

९. जो लोग धर्म की आवश्यकता स्वीकार नही करते, उन्हें भी जीवन मे धर्म का आश्रय लेना ही पडता है, क्योकि धर्म का आश्रय लिए बिना जीवन-व्यवहार निभ ही नही सकता है।

१०. ससारव्यापी निविड़ अन्धकार में धर्म के प्रकाश की किरणें ही एकमात्र आशाजनक हैं।

११. धर्म ही सच्चा मगल है। धर्म ही अशरण

का शरण है। धर्म मे ही मानव-समाज की सुख-शाति सुरक्षित है।

१२. प्रत्येक धर्म-सेवक का कर्त्तव्य होता है कि जिस धर्म को उसने अपने गले का हार वनाया है, जिस धर्म से अनन्त सुख और अक्षय शाति प्राप्त होने का उसे विश्वास है, उस धर्म के लिए किसी भी प्रिय से प्रिय वस्तु को न्यौछावर करने से वह पीछे न हटे।

१३. जो धर्म को विशेष और सर्वाधिक कहता है, मगर धर्म के लिए किसी वस्तु का त्याग करने मे सकोच करता है, समझना चाहिए कि उसने धर्म का महत्त्व नही समझा है।

१४. धर्म के अभाव मे एक श्वास लेना भी कठिन है। ऐसा होने पर भी धर्म की निन्दा की जाती है, उसका एक कारण है—धर्म के नाम पर होने वाली ठगी।

१५ जगत् के इतिहास मे जितने लोकोत्तर महापुरुष हो गये हैं, उन्होने धर्मस्थापना, धर्मप्रचार एव धर्मजागृति के लिए ही अपना जीवन उत्सर्ग किया है।

१६. यह तन तुच्छ है और धर्म महान् है। यह

तुच्छ शरीर भी टिकाऊ नही है, एक दिन नष्ट हो जाएगा। यदि यह शरीर धर्म के लिए नष्ट होता है तो इससे अधिक सद्भाग्य की बात और क्या होगी ?

१७. अशाश्वत शरीर की रक्षा के निमित्त शाश्वत धर्म का नाश मत करो।

१८ धर्म का अनुष्ठान करने वाले लोग धर्म से पुत्र या धन की आशा क्यो रखते हैं, जो जिसका कारण ही नही, वह उसे कैसे पैदा करेगा ?

(१३) धर्म-श्रद्धा

१ धर्म जब प्राणो के समान प्रिय जान पडने लगे तभी समझना चाहिए कि हमारे अन्त.करण मे धर्म-श्रद्धा है।

२ दृढ विश्वास, धर्मरूपी महल की नीव है। मगर धर्म मे जो दृढ विश्वास हो वह अन्धविश्वास मे से पैदा नही होना चाहिए। जो विश्वास श्रद्धा और तर्क की कसौटी पर चढा हुआ होता है, वही सुदृढ होता है।

३ सद्भावना धर्म-श्रद्धा की कसौटी है।

सच्ची धर्म-श्रद्धा को अपने जीवन मे जिसे प्राप्त करना है, उसे दुर्भावना का त्याग कर सद्भावना प्राप्त करनी चाहिए ।

४. बुद्धि की कसौटी की अपेक्षा हृदय की कसौटी अधिक विश्वसनीय है ।

५ जहां मनुष्य अपने को असहाय पाता है, वहाँ श्रद्धा उसकी सहायता करती है ।

६. तर्क और श्रद्धा दोनो का जहा समन्वय होता है, वही सत्य की उपलब्धि की सभावना हो सकती है ।

७ जो मनुष्य केवल वितंडावाद बढाने के लिए या अपनी तर्क शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए शंका की लहरो पर नाचता रहता है, वह धर्म का तनिक भी मर्म नही समझ सकता ।

८ धर्म श्रद्धालु व्यक्ति भोगो से विरक्त रहता है और दूसरो के सुख के लिए आप कष्ट सहन करता है ।

६. लोग धर्म-श्रद्धा के फलस्वरूप मोह या विकार की आशा रखते हैं, परन्तु शास्त्र कहता है कि

धर्म-श्रद्धा का फल सासारिक पदार्थों के प्रति अरुचि जगाना है। कहाँ तो सासारिक पदार्थों के प्रति निर्ममत्व और कहाँ सासारिक पदार्थों की चाह! धर्म से इस प्रकार विपरीत फल की आशा रखना कहाँ तक उचित है?

१०. हमारे अन्त करण मे धर्म-श्रद्धा है या नही, इस बात की परीक्षा करने का 'थर्मामीटर' साता-वेदनीय के सुखो के प्रति अरुचि उत्पन्न होना है। अगर आप में धर्म-श्रद्धा होगी तो सातावेदनीय-जन्य सुखो के प्रति आपको अरुचि अवश्य होगी।

११. जब सासारिक विषयभोगो के ति विरक्ति हो तो समझना चाहिए कि मुझ मे धर्म-श्रद्धा है।

१२ कर्मों की स्थिति नाशवान् है, इस दृढ विश्वास के साथ आगे बढते जाओ तो आत्मा के समस्त आवरण जल्दी नष्ट हो जायेंगे। दृढ विश्वास वाले के प्रगाढ कर्म भी शिथिल पड जाते हैं और तीव्र रस वाले कर्म मन्द रस वाले हो जाते हैं।

१३. जैसे अग्नि मे घी की आहुति देने से अग्नि अधिकाधिक प्रज्वलित होती है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि

को धर्म-श्रद्धा से विचलित करने के लिए किये गये समस्त प्रयत्न धर्म दृढता के कारण बन जाते हैं।

(१४) धर्म-शास्त्र

१ धर्म-शास्त्र एक प्रकार का आध्यात्मिक 'पिनल कोड' है।

२ धर्म सूत्रों के धार्मिक, नैतिक और आध्यात्मिक कायदे-कानून इतने सुन्दर और न्याय सगत हैं कि अगर हम निर्दोष भाव से उनका अनुकरण करें तो देश, समाज या कुटुम्ब मे घुसे हुए अनेक प्रकार के पारस्परिक वैरभाव स्वत शान्त हो सकते हैं।

३. महापुरुषो के अनुभव को ही शास्त्र कहते हैं। महापुरुषो ने जो बात बडे आत्म-भोग से समझी, उनके प्रताप से उस बात का ज्ञान हम सरलता से कर सकते हैं।

४. सूर्य का प्रकाश फैलने पर भी अगर कोई आंख मूंद कर चलेगा तो वह ठोकर खाएगा ही इसमे सूर्य का क्या बिगड़ने वाला है? इसी प्रकार यदि

महात्माओ की वाणी को प्रमाणभूतन मानोगे तो तुम्ही हानि उठाओगे।

५ घर का कचरा साफ करने वाली स्त्री यह नही सोचती कि मैं किसी पर एहसान या उपकार कर रही हूँ, इसी प्रकार साधु को भी धर्मकथा कहकर एहसान कर रहा हूँ, ऐसा नही विचारना चाहिए।

६ धर्मकथा से चित्त के विकार दूर होते हैं और चित्त को शाति मिलती है।

७ जिसे सुनने से मोह मे कमी हो, वही धर्मकथा है और जिसे सुनने से मोह मे कमी न हो, बल्कि मोह उलटा बढ जाय, वह धर्मकथा नही, मोहकथा है।

८ निस्पृह होकर अपनी आत्मा की तराजू पर भगवान् की वाणी तोलोगे तो उसकी सत्यता प्रकट हुए बिना नही रहेगी।

(१५) ग्राम-धर्म

१. ग्राम धर्म की भूमिका में से ही सभ्यता, नागरिकता और राष्ट्रीयता आदि अनेक धर्मांकुर फूटते हैं।

२. जव तक धर्मवृक्ष के ग्राम धर्म रूप मूल को नीति के जल से सीचा न जायेगा, तब तक सूत्र धर्म और चरित्र धर्म रूपी मधुर फल की आशा नही की जा सकती।

३ गांवो की सेवा ही हिन्दुस्तान के पुनरुद्धार की भूमिका है।

४. मस्तिष्क अस्थिर या विकृत हो जाने पर जैसे शरीर को अवश्य हानि पहुँचती है, उसी प्रकार नागरिको द्वारा अपना नगर धर्म भुला देने के कारण ग्राम्यजन अपना ग्राम धर्म भूल जाते हैं।

(१६) राष्ट्र-धर्म

१ गरीबो के लिए जव तक पर्याप्त अन्न और वस्त्र का प्रवन्ध नही होता तव तक राष्ट्र धर्म अपूर्ण है।

२. राष्ट्र धर्म व्यक्तिगत या वर्गगत हित की अपेक्षा समष्टिगत हित का सर्वप्रथम विचार करता है।

३. राष्ट्र की रक्षा मे हमारी रक्षा है और राष्ट्र के विनाश मे हमारा विनाश है।

४. जो नागरिक नगर धर्म का पालन नही करता वह अपने राष्ट्र का अपमान करता है, देशद्रोह करता है।

(१७) समभाव

१. समभाव से ही ससार स्वर्ग के समान सुख-मय, और जीवन शान्ति तथा सन्तोष से परिपूर्ण बन सकता है।

२. विषम भाव रोग के समान है और समभाव आरोग्यता के समान। विषमभाव का रोग समभाव की आराधना से ही मिटता है।

३ जब राग-द्वेष नही होता तो आत्मा में समता की सुधा प्रवाहित होने लगती है। उस सुधा मे ऐसी मधुरता होती है कि उसका आस्वादन करके मनुष्य निहाल हो जाता है।

४ तुम किसी भी घटना के लिए दूसरो को उत्तरदायी ठहराओगे तो राग-द्वेष होना अनिवार्य है,

अतएव उसके लिए अपने आप उत्तरदायी बनो। इस तरीके से तुम निष्पाप बनोगे, तुम्हारा अन्त करण समता की सुधा से आप्लावित रहेगा।

५ ईश्वर की प्रार्थना से समभाव पैदा होता है और समभाव ही मोक्ष का द्वार है।

६ जब तक तुम्हारा मस्तिष्क और हृदय निंदा और प्रशसा को समान रूप मे नही ग्रहण करता, समझना चाहिए कि तुमने तब तक परमात्मा को पहिचाना ही नही है।

७. समभाव साधु का सर्वस्व है।

८ जैसे सैनिक बन्दूक या तीर का निशाना लगाना एक ही साथ नही सीख लेता पर सावधान होकर, एकाग्र भाव से सतत् अभ्यास करता है, इसी प्रकार जीवन-सिद्धि का लक्ष्य सिद्ध करने के लिए सम-भाव का अभ्यास करते रहना चाहिए। सैनिक अभ्यास करते समय बहुत बार निशाना चूक जाता है, फिर भी उसका लक्ष्य तो निशाना साधना ही होता है। इसी प्रकार समभाव को अगर जीवन मे सहसा न उतारा जा

सके तब भी लक्ष्य तो वही होना चाहिए और उसके लिए साधना भी करते रहना चाहिए।

९. समभाव के बिना संसार नरक के समान बनता है। समभाव के अभाव मे जीवन अस्थिर, अशान्त, क्लेशमय और सन्तापयुक्त बनता है। ससार में जितनी मात्रा मे समभाव की वृद्धि होगी, उतनी ही मात्रा मे सुख की वृद्धि होगी।

१० जिसके हृदय मे समभाव जागृत हो जाता है उसे किसी प्रकार की हानि नही उठानी पडती।

११. तुम्हारे भीतर वास्तविक शान्ति होगी तो कोई दूसरा तुम्हे अशान्त नही कर सकेगा।

१२. हीरा, सोने मे जडा जाता है तब भी चमकता है और जब घनो से कूटा जाता है तब भी चमकता रहता है। इसी प्रकार सुख-दुख मे समान भाव रखने वाला व्यक्ति ही वास्तव मे भाग्यशाली है।

१३ किसी मनुष्य मे भले ही अधिक बुद्धि न हो, फिर भी उसकी थोड़ी-सी बुद्धि भी अगर निष्पक्ष

अर्थात् सम हो तो उस मनुष्य के लए सभी वस्तुएं सम वन जाती हैं।

१४ कोई भी नैसर्गिक परिवर्तन मनुष्य से पूछकर नही होता, वह मानवीय इच्छा से परे है। ऐसी स्थिति मे मनुष्य को यही उचित है कि वह मध्यस्थभाव से परिवर्तन को देखता रहे और समभाव धारण करे।

(१८) सामायिक

१. ज्ञानपूर्वक होने वाला समभाव ही सामायिक है।

२ जैसे पृथ्वी के आधार विना कोई वस्तु नही टिक सकती और आकाश के आधार विना पृथ्वी टिक नही सकती, इसी प्रकार सामायिक का आश्रय पाये विना दूसरे गुण नही टिक सकते।

३ समभाव से अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव होता है। उसका आस्वाद वाणी द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता। वह सिर्फ अनुभव की वस्तु है और अनुभव करने वाले ही उसे पहचानते हैं।

४. जिस सामायिक का तात्कालिक फल प्राप्त नही हुआ है, उसका परम्परा पर प्राप्त होने वाला फल भी कैसे मिल सकता है ?

५. जिस सामायिक का तात्कालिक फल मिलता है, उसका परम्परा-फल भी मिलता है और जिसका तात्कालिक फल नही मिलता, उसका परम्परा से फल भी नही मिलता।

(१९) वन्दना

१. गुण देखकर उन्हे प्राप्त करने के लिए की जाने वाली वन्दना ही सच्ची वन्दना है।

२. अहकार को जीतना वन्दना का एक प्रधान प्रयोजन है।

३. वन्दना करने वाला किसी से पराजित नही होता। वन्दना के प्रताप से आत्मा के अनेक विकार दूर हो जाते हैं।

(२०) प्रतिक्रमण

१. अशुद्ध भावो को बाहर निकालने और

आत्मा मे शुद्ध भाव लाने के लिए प्रतिक्रमण किया जाता है।

२ जो आत्मा स्व-स्थान का त्याग करके, प्रमाद के वश होकर पर-स्थान मे चला गया हो, उसे फिर स्व-स्थान मे लाना प्रतिक्रमण है।

३ प्रतिक्रमण करने से व्रत में पड़े हुए छिद्र ढक जाते हैं।

४. प्रतिक्रमण करना एक प्रकार से फिसली हुई आत्मा को सावधान करना है।

५. प्रतिक्रमण करना आत्मारूपी घड़ी को चाबी देना है।

(२१) कायोत्सर्ग

१. प्रतिक्रमण करते समय व्रतो के अतिचार रूपी घाव देखकर, उन्हे बन्द करने के लिए कायोत्सर्ग रूपी औषध लगाई जाती है।

२. जिस प्रकार मैंले कपड़े धोये जाते हैं और उनका मैंल दूर किया जाता है, उसी प्रकार आत्मा के

व्रत रूपी वस्त्र पर अतिचार रूपी जो मैल चढ गया है, उसे साफ करने के लिए कायोत्सर्ग रूपी जल से धोना पड़ता है।

३ जिस किसी उपाय से शरीर को ही नष्ट कर डालना कायोत्सर्ग नही है, वरन् शरीर सम्बन्धी ममता को त्याग देना सच्चा कायोत्सर्ग है।

४. जब उपसर्ग के कारण पर क्रोध नही आता और उपसर्गदाता पर भी शान्तभाव बना रहता है, तभी कायोत्सर्ग ठीक रह सकता है।

५ कायोत्सर्ग करने से अतीतकाल और वर्तमान काल के पापो के प्रायश्चित की विशुद्धि होती है।

(२२) प्रत्याख्यान

१ कायोत्सर्ग से अतीतकाल के पापो की शुद्धि होती है और प्रत्याख्यान से भविष्य के पाप रुकते हैं।

२ प्रत्याख्यान करने से आस्रव-द्वारो का निरोध होता है।

३ प्रत्याख्यान करने वाले को अपने त्याग से

बाहर की मूल्यवान वस्तु मिलेगी तो भी वह लेने के लिए तैयार नही होगा और न उसे स्वीकार करेगा।

४ प्रत्याख्यान वही कर सकता है जो कायोत्सर्ग करता है।

(२३) सहिष्णुता

१ सहिष्णुता कायरता का चिह्न नही वरन् वीरता का फल है।

२. उत्तेजना का प्रसग उपस्थित होने पर अन्त करण की निर्बल वृत्तियो पर विजय प्राप्त करके स्वाभाविक शाति को सुरक्षित रख सकना साधारण व्यक्ति का काम नही है। अपने ऊपर संयम का अकुश रखना विजेताओ का धर्म है।

(२४) समानता

१ जगत् मे शाति स्थापित करने के लिए साम्य की आवश्यकता तो है, मगर बन्धुता के विना शाति-स्थापित करने का उद्देश्य पूरा नही हो सकता।

२ साम्य की स्थापना करते समय यदि

बन्धुता की प्रतिष्ठा नही की गई तो मारकाट और अशाति हुए विना नही रहेगी ।

३ जहां तक समानता का आदर्श जीवन मे नही उतरता वहां तक आत्मा की पहिचान नही होती ।

४. समानता का आदर्श जीवन मे उतारने के लिए सवसे पहले जीवन मे मानवता प्रकट करनी पडती है ।

(२५) साम्यवाद

१. साम्यवाद के सिद्धान्त को अगर सजीव वनाया जा सकता है तो उसमे वन्धुता की भावना का सम्मिश्रण करके ही ।

२. वन्धुताविहीन साम्यवाद विनाश का कारण वन सकता है ।

(२६) कर्म

१ 'जिस प्रकार मुँह को मीठा करने और जलाने का गुण मिश्री और मिर्च में है, उसी प्रकार शुभ और अशुभ फल देने की शक्ति कर्म मे है ।

२ मगल से मगल और अमगल से अमगल होता है। आघात का प्रत्याघात होता रहता है। आज जो पार्ट तुम दूसरे से करवा रहे हो वही तुम्हे भी कभी करना पड़ेगा।

३. कभी मत समझो कि करने वाला दूसरा है और आपत्ति हमारे सिर आ पडी है। विना किया कोई भी कर्म भोगा नही जाता।

४. प्रत्येक कर्म का फल तत्काल नही मिल जाता। इसलिए हमारे किस कर्त्तव्य का फल किस समय मिलता है, यह चाहे समझ मे न आवे, तथापि यह सुनिश्चित है कि हम आज जो फल भोग रहे हैं, वह हमारे ही किसी कर्म का है।

५ हम अपने ही किये कर्म का फल भोगते है, यह जान लेने पर शान्ति ही रहती है, अशान्ति नही होती। अपनी आँख मे अपनी ही ऊगली लग जाय तो उपालम्भ किसे दिया जाय ?

६. कृत कर्मो से, उनका फल भोगे विना छुटकारा नही मिल सकता। अतएव फल से वचने की कामना करना व्यर्थ है।

(२७) हिंसा

१. मन से किसी का बुरा विचारना हिंसा है। ऐसी हिंसा करने वाले प्राणियो को, यथासमय बदला चुकाना पड़ता है।

२. प्रमाद हिंसा है,
विषय लोलुपता भी हिंसा का कारण है।

३. किसी सद्गुणी के सद्गुण को देखकर प्रमोद पाने के वदले उस पर द्वेषभाव होना और उसे किसी प्रकार नीचा दिखाने का प्रयत्न करना भी हिंसा है

४. तुम्हारे भीतर की हिंसा ही सिंह और साप को हिंसक वनाती है।

(२८) अहिंसा

१. अहिंसावादी कायर नही, वीर होता है। सच्चा अहिंसावादी, अहिंसा की असीम शक्ति द्वारा, रक्त का एक वूंद गिराये विना, वडी से वडी पाशविक शक्तियो को परास्त करने की क्षमता रखता है।

२. अहिंसा का विधि अर्थ है—मैत्री, बन्धुता, सर्वभूत-प्रेम। जिसने मैत्री या बन्धुता की भावना जागृत नही की है, उसके हृदय मे अहिंसा का सर्वाङ्गीण विकास नही हुआ है।

३ जहा अहिंसा की प्रतिष्ठा होती है वहा वैर का नाश हो जाता है।

४ अनुकम्पा से विभूषित मनुष्य पराये दु ख को अपना दु ख मानता है और उसे दूर करना अपने दु ख को ही दूर करना समझता है। वही सच्ची अनुकम्पा है जिसमे अभिमान और लालसा न हो।

५. जैसा व्यवहार तुम अपने लिए पसन्द नही करते वैसा व्यवहार तुम दूसरो के साथ भी मत करो।

६. मुझको मारने वाला मुझे बुरा लगता है तो जिन्हे मैंने मारा है उन्हे मैं क्यो न बुरा लगता होऊंगा ?

७ जिस प्रकार तुम्हे यह पसन्द नही है कि कोई तुम्हे मारे, उसी प्रकार दूसरे प्राणियो को भी यह पसन्द नही है कि तुम उन्हे मारो। अतएव किसी को न मारना धर्म है।

८. दया कहती है—जहां कही दुखिया को देखो वही मेरा मन्दिर समझ लो। दुखिया का मन ही मेरा मन्दिर है। मैं ईट और चूने के कारागार मे कैद नही हू। जड़ पदार्थों में मेरा वास नही है। मैं जीते-जागते प्राणियो मे वास करती हूँ।

९ दया रूप मोक्षमार्ग ही भगवान् का चरण है और उस मोक्षमार्ग को ग्रहण करना ही भगवान् के चरण ग्रहण करना है।

१०. दीन-दुखिया से प्रेम लगा कि परमात्मा से प्रेम लग गया।

११ एक अहिंसावादी मर भले ही जाय पर अन्यायपूर्वक किसी का प्राण या धन हरण नही करता।

१२. अन्त करण मे जब दया का निर्मल स्रोत बहने लगता है तब घृणा आदि के दुर्भाव न जाने किस ओर बह जाते हैं।

१३ अहिंसा के प्रताप से दु ख भी सुख बन जाता है और विष भी अमृत। आग भी शीतल हो जाती है और कठिन से कठिन कार्य भी सरल हो जाता है।

१४ अहिंसा का पालन करने से दुःख की सभावना ही नही रहती। आज कल जो व्याधिया दृष्टिगोचर हो रही हैं उनका दायित्व अहिंसा पर नही, हिंसा पर है।

१५ रगड़े-झगड़े, क्लेश-द्वेष आदि का मूल कारण हिंसा ही है। अहिंसा के कारण आज तक कोई झगडा नही हुआ। न्यायालय मे जाकर तलाश करो तो विदित होगा कि अहिंसा के कारण एक भी मुकदमा वहा न पहुँचा होगा। अहिंसा सदैव सुख का कारण है।

१६ यदि हिंसक का विरोध किया, तब तो प्रति-हिंसा हो जायेगी, जो हिंसा ही है। सच्चा अहिंसक, अहिंसा के लिये हिंसा करना स्वीकार नही कर सकता।

१७ अहिंसा के बल के सामने हिंसा गलकर पानी पानी हो जाती है।

१८. तलवार चाहे जितनी तीखी धार वाली क्यों न हो, अगर वह कायर के हाथ पड जाती है तो निकम्मी साबित होती है तथा वही तलवार जब किसी वीर के हाथ मे आ जाती है तो अपना जौहर दिखलाती है। इसी प्रकार अहिंसा और क्षमा के शस्त्र कायरो के हाथ

पडकर निष्फल साबित होते हैं और वीर पुरुषो के हाथ लगकर अमोघ शस्त्र सिद्ध होते हैं।

१६ जो दूसरे को दु खी देखकर उसके दु ख को आत्मीय भावना से ग्रहण करता है और दूसरे के सुख मे प्रसन्न होता है, वह दयालु है, वही धर्मी है, कर्तव्य-निष्ठ है।

२०. मित्रो ! दया का दर्शन करना हो तो गरीब और दु खी प्राणियो को देखो। देखो न केवल नेत्रो से, वरन् हृदय से देखो। उनकी विपदा को अपनी विपदा समझो और जैसे अपनी विपदा निवारण करने के लिये चेष्टा करते हो वैसे ही उनकी विपदा निवारण करने के लिए प्रयत्नशील बनो।

२१ अगर तुम चर्बी लगे वस्त्रो का पहनना छोड दो, तो उस देश मे चर्बी के लिये होने वाली हिंसा रुक सकती है।

(२६) सत्य

१ सत्य सब धर्मों से बढकर धर्म है और झूठ सब पापो मे बढकर पाप है।

२. धर्म से सत्य को पृथक् कर दिया जाय तो धर्म नाम मात्र के लिए ही शेष रहेगा।

३ सत्य को समझ लेने पर वे ही लोग, जो आपस मे धर्म के नाम पर द्वेष रखते हैं, द्वेषरहित होकर एक दूसरे से गले मिलकर भाई-भाई की तरह प्रेमपूर्वक रह सकते हैं।

४. जिन महापुरुषो ने सत्य को पूर्ण रूप से प्राप्त कर लिया है, उनमे और ईश्वर मे कोई भेद नही रह जाता।

५ किसी एक सम्प्रदाय, धर्म या मजहव के पीछे जो उन्मत्त है, जो स्वार्थवश अच्छे-बुरे की परवाह नही करता, जो वास्तविकता की उपेक्षा करके हां मे हां मिलाता है, ऐसा मनुष्य सत्य को नही पहचान सकता।

६ सत्य स्वाभाविक है, सरल है।

७ सत्य के विना ससार टिक नही सकता।

८. सत्य मे स्वयभू क्षमता है। सत्य का वल प्रवल है। सत्य की शक्ति असीम है। सत्य के सहारे मनुष्य निश्चिन्त रह सकता है।

९. जिस विचार, बात और कार्य का त्रिकाल मे भी पलटा न हो, जिसको अपनी आत्मा निष्पक्ष भाव से अपनावे, जिसके पूर्ण रूप से हृदय मे स्थित हो जाने पर भय, ग्लानि, अहकार, मोह, दम्भ, ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ आदि कुत्सित भाव नि.शेष हो जावे, जो भूत मे था, वर्तमान मे है और भविष्य मे होगा तथा जिसके होने पर आत्मा को वास्तविक शान्ति प्राप्त हो, उसी का नाम 'सत्य' है।

१० जिस विचार मे ससार के किसी प्राणी को कष्ट देने की कल्पना न की गई हो, जिसके प्रकट कर देने पर किसी प्रकार की कुत्सित भावना का परिचय न मिले और वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त करके निष्पक्ष-भाव से प्राणीमात्र को अपना मित्र समझते हुए जो विचार किया जाय, वह मानसिक सत्य है।

११ जिस वाणी में, किसी को अनुचित कष्ट पहुँचने योग्य बात न कही गई हो, जिसे वक्ता ने नि.स्वार्थभाव से केवल सत्य का स्पष्टीकरण करने के लिए कहा हो जो बात जैसी देखी, सुनी, समझी है उसे उसी रूप मे व्यक्त की हो, वह वाचिक-अर्थात् वाणी का सत्य है।

१२. जिस कार्य के करने से ससार के किसी प्राणी का अहित न होकर हित ही हो, जो स्वार्थ, छल, दम्भ, ईर्ष्या, द्वेषादि दुर्गुणो से रहित हो, शास्त्र मे वर्णित नीति को जिस कार्य से क्षति न पहुँचती हो, वह कायिक सत्य है।

१३. सत्य-विचार, सत्य-भाषण और सत्य-व्यवहार करने वाला मनुष्य ही, उत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

१४. जिस मनुष्य मे सत्य नही है, समझना चाहिए कि उसकी देह जीवरहित काष्ठ पाषाण की तरह, धर्म के लिये अनुपयोगी है।

१५ जो सत्य का आचरण नही करता, वह संसार मे कभी भी सुखी नही रह सकता, न उसका कोई आदर ही करता है।

१६ ईश्वर की शरण मे जाने का उपाय है—सत्य। सत्य ईश्वरीय विधान है।

१७. अगर आप अपने प्रत्येक जीवन-व्यवहार को सत्य की कसौटी पर कसें, सत्य को ही अपनावें और सत्य

पर पूर्ण श्रद्धा रखे तो श्राप ईश्वर की शरण में पहुँच सकेंगे श्रौर श्रापका अक्षय कल्याण होगा।

१८. सत्य-पूजा की सामग्री के लिए साधारणतया एक कौडी भी नही खरचनी पड़ती, किन्तु कभी-कभी इतना अधिक श्रात्मत्याग करना पडता है कि ससार का कोई भी त्याग उसकी बराबरी नही कर सकता।

१६. मन, वचन श्रौर कार्य से सत्य का श्राचरण करना ही सत्य की पूजा है।

२० सत्य का व्यवहार करना श्रौर किसी से भय न खाना ही मोह को जीतना कहलाता है।

२१ सत्य के पालन करने वाले को किसी भी समय अशान्ति नही होती ।

२२ सत्य पालन करने वाले को तो सदैव श्रानन्द है ही, किन्तु जो व्यक्ति सत्य का पालन करने वाले व्यक्ति के सम्पर्क मे एक बार भी श्रा जाता है श्रौर उसकी एक भी शिक्षा ग्रहण कर लेता है, वह भी भविष्य मे अपना कल्याण मार्ग पा जाता है।

२३. जो मनुष्य सत्य का श्राचरण करने लग जात

है उसका आत्मबल बढ जाता है और वह उस आत्मबल द्वारा महान् से महान् कार्य भी कर डालता है।

२४ सत्य पर सम्पूर्ण श्रद्धा होने और असत्य को आग्रहपूर्वक त्यागने मे ही एकान्त कल्याण है।

२५ सत्य भगवान् है, इसलिये सत्य की आराधना करो, सत्य का आसरा गहो, सत्य पर श्रद्धा रखो, सत्य का आचरण करो।

२६ असत्य साहसशील नही होता। वह छिपना जानता है, बचना चाहता है, क्योकि असत्य मे बल नही होता। निर्बल का आश्रय लेकर कोई कितना निर्भय हो सकता है ?

२७ जो सत्य के चरणो मे अपने प्राणो को सौप देता है, उसमे सत्य का बल आ जाता है और वह इतना सबल बन जाता है कि विघ्न और बाधायें उसका पथ रोकने मे असमर्थ सिद्ध होती है।

२८ सत्य पर जिसे पूर्ण श्रद्धा है वह निडर है। ससार की कोई भी शक्ति उसे भयभीत नही कर सकती।

२९. किसी से भय न करके सत्य ही सत्य का व्यवहार रक्खो तो तुम जान जाओगे कि तुम्हे ईश्वर मिल गया ।

३०. सत्य-मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान कठिन भी है और फूलो की सेज पर सोने के समान सरल भी ।

३१. सत्य का उपासक, सत्य के समक्ष तीन लोक की सम्पदा को ही नही वरन् अपने प्राणो को भी तुच्छ समझता है ।

३२. चाहे चन्द्र से आग बरसने लगे और पृथ्वी उलट जाय किन्तु सत्पुरुष झूठ कदापि नही बोल सकते ।

३३. असत्य का त्याग करके व्यापारी देश का मस्तक ऊंचा उठा सकते हैं । इससे उन्हे अधिक प्रतिष्ठा और सफलता मिल सकती है ।

(३०) अस्तेय

१. असभ्य उपायो द्वारा चोरी करने वालो की

अपेक्षा, सभ्य उपायों द्वारा चोरी करने वाले कही अधिक भयकर हैं।

२. चोरी का सबसे बडा वाह्य कारण अराजकता है।

३. अपने सिर पर लिए हुए कर्तव्य का पालन न करना भी एक प्रकार की चोरी है।

४. दुनिया के तमाम अन्याय और नीति के विरुद्ध की जाने वाली खीचातानी चोरी के ही विभिन्न रूप हैं।

५. जो रक्खी हुई धरोहर को न दे और जो विना रक्खे मागे, दोनो ही चोर के समान हैं।

(३१) ब्रह्मचर्य

१ अखंड ब्रह्मचारी ब्रह्म का शीघ्र साक्षात्कार कर सकता है।

२ ब्रह्मचर्य ही कल्याण का मार्ग है।

३ मूल के अभाव मे वृक्ष नही होता, इसी प्रकार ब्रह्मचर्य के अभाव मे तप नही होता।

४ ब्रह्मचर्य जीवन है। उससे शक्ति का विकास होता है। जहा शक्ति है वहां रोगो का आक्रमण नही होता। अशक्त और दुर्बल पुरुष ही रोगो द्वारा सताये जाते हैं।

५ ब्रह्मचर्य दिव्यशक्ति और दिव्यतेज प्रदान करने वाला महान् रसायन है। जो मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है, उसके लिए कोई भी वस्तु दुर्लभ नही रहती।

६. पूर्ण ब्रह्मचारी को समस्त शक्तिया प्राप्त होती हैं, कोई भी शक्ति उसके लिये शेष नही रहती।

७ वीर्य मनुष्य का जीवन-सत्य है।

८. वीर्य को वृथा बर्बाद करने के बराबर कोई बुराई नही है। ऐसा करना घोर अन्याय है और अपने पैर पर आप ही कुल्हाडा मारना है।

९ वीर्य हमारा ब्रह्म है। वीर्य हमारा तेज है।

वीर्य हमारा सर्वस्व है। जो मूर्ख अपने सर्वस्व का नाश कर डालता है उसके बराबर हत्यारा दूसरा कौन है ?

१०. जिस वीर्य के प्रताप से बिना दान गिरे, बिना आखो की जोत घटे, बिना बाल सफेद हुए सौ वर्ष तक जीवित रहा जा सकता है, उस वीर्य को खराब कामो मे या साधारण मौज के लिए नष्ट कर देना कितनी मूढता है ?

११. सदा शुद्ध वातावरण मे रहना, शुचि विचार रखना, आहार-विहार सम्बन्धी विवेक रखना, ब्रह्मचर्य के साधक के लिए अतीव उपयोगी है।

१२ जो शारीरिक सुखो की तरफ से सर्वथा निरपेक्ष बन जाता है, वही पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है। शरीर को सवारने वाला, शरीर सम्बन्धी टीमटाम करने वाला ब्रह्मचर्य का पालन नही कर सकता।

१३. पोशाक का भावना के साथ गहरा सम्बन्ध है। ऐसा न होता तो ब्रह्मचर्यमय जीवन बिताने वालो के लिए खास तरह के वस्त्रो का विधान क्यो किया जाता ?

१४. अपनी जीभ पर अकुश रखना ब्रह्मचारी के लिये अत्यावश्यक है। जो जीभ का गुलाम है उसे ब्रह्मचर्य से भी हाथ धोना पडता है। अतएव ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए सदैव भोजन के सम्बन्ध मे विवेक रखना चाहिए।

१५ बेकार रहना, निठल्ले बैठे रहना भी वीर्यनाश का कारण है। जो लोग अपने शरीर को और मन को अच्छे कामो मे नही लगा रखते, उनका वीर्य स्थिर नही रह सकता।

१६. रात मे अधिक जागना और सूर्योदय के वाद तक सोते रहना तथा अश्लील पुस्तकें पढना भी चित्त-विकार का कारण है। चित्त के विकार से वीर्य का विनाश होता है।

१७. चाय, शराव, तमाखू आदि समस्त नशीली वस्तुये वीर्य को नष्ट करने वाली हैं। इनके सेवन से आज की पीढी वीर्यहीन वनती जा रही है। जव आज की पीढी वीर्यहीन है तो यह निश्चित है कि भावी पीढी और ज्यादा वीर्यहीन होगी, अतएव वीर्य-रक्षा के लिये नशीली चीजो का त्याग करना आवश्यक है।

१८. बहिनो ! अगर तुम्हारी हनुमान सरीखा शक्तिशाली उत्पन्न करने की साध है तो अपने पति को कामुक बनाने वाले साज-सिंगार और हाव-भाव त्याग कर स्वय ब्रह्मचर्य की साधना करो और पति को भी ब्रह्मचर्य पालन करने दो।

१९ सन्तति-नियमन का सर्वश्रेष्ठ उपाय स्त्री-ससर्ग का त्याग करना है।

(३२) अपरिग्रह

१. परिग्रह, समस्त दु खो का कारण है। वह परिग्रहवान् को भी दु ख मे डालता है और दूसरो को भी। परिग्रह से व्यक्तित्व की भी हानि होती है और समाज की भी। यह आध्यात्मिक हानि का भी कारण है और शारीरिक हानि का भी।

२ परिग्रह, आत्मा पर लदा हुआ वह बोझ है जो आत्मा को उन्नत नही होने देता और मोक्ष की ओर नही जाने देता।

३ जहा परिग्रह है वहां आलस्य है, अकर्मण्यता है।

५. परिग्रही व्यक्ति दूसरो के श्रम से लाभ उठाने

की ही घात में रहता है। इसीलिए वह आलसी और विलासी हो जाता है।

५. तृष्णा ही दु ख का मूल है।

६. तृष्णा की नदी से बाहर निकल जाने वाला अक्षय, असीम और अनन्त सुख का पात्र बनता है।

७ तुम किसी वस्तु के प्रति ममत्व न रक्खो तो परिग्रह तुम्हारा दास बन जाएगा।

८. अपनी परछाई के पीछे कोई कितना ही दौडे, वह आगे-आगे दौडती रहेगी, पकड मे नही आ सकेगी। इसी प्रकार तृष्णा की पूर्ति के लिए कोई कितना ही उपाय करे, मगर वह पूरी नही होगी।

९ जैसे मलीन काच मे मु ह नही दीखता, उसी प्रकार लोभ और तृष्णा से भरे हुए हृदय को न्याय नही सूझता।

(३३) धन-सम्पत्ति

१. धर्मरहित सम्पत्ति घोर विपत्ति है।

२. वह सम्पत्ति, सम्पत्ति नही विपत्ति है, जो आत्मा और परमात्मा के बीच मे दीवार बन कर खडी हो जाती है।

३. धन को बडा मत मानो, धर्म को बडा समझो।

४. आपकी नजर मे वह नाचीज ठहरेगा, जिसके पास कौडी भी न होगी, लेकिन जिसने कौडी भी रखने की चाहना नही की, वही महात्मा है।

५ धन तुम्हारे लिए है या तुम धन के लिए हो? अगर तुम समझ गये हो कि धन तुम्हारे लिए है तो तुम धन के गुलाम कैसे बन सकते हो?

६ अधिकाश लोगो को 'लक्ष्मी' चाहिए, 'लक्ष्मीपति' नही चाहिए। 'दाम' चाहिए, 'राम' नही चाहिए। यह चाह रावण की चाह सरीखी है। रावण ने सीता को चाहा, राम को नही चाहा। इसका फल क्या हुआ? सर्वनाश।

७. तुम समझते हो कि तुमने तिजोरी मे धन को कैद कर लिया है, पर धन समझता है कि उसने इतने बडे धनी को अपना पहरेदार मुकर्रर कर लिया है।

८. तन और धन से मोह हटा लेने से वे कहीं चले नही जाते, किन्तु उन पर सच्चा स्वामित्व प्राप्त हो जाता है।

९. चाह करने से धन नही आता। हृदय मे त्याग की भावना हो तो लक्ष्मी दौडकर चली आती है।

१०. सच्चा आनन्द धन मे नही, धन का त्याग करने मे है। धन का त्यागी स्वय सुखी रहता है और दूसरो को भी सुखी करता है।

११. जिन्होने धन को धूल के समान मानकर उसका त्याग कर दिया है, उन निर्लोभी पुरुषों की ही वदौलत ससार सुखी हो सकता है।

१२. तुम अपनी कृपणता के कारण धन का व्यय नही कर सकते पर धन तुम्हारे प्राणो का भी व्यय कर सकता है।

१३. तुम धन का त्याग न करोगे तो धन तुम्हारा त्याग कर देगा। यह सत्य इतना स्पष्ट और ध्रुव है कि इसमे लेशमात्र भी सन्देह नही किया जा सकता।

१४. सम्यग्दृष्टि का लक्ष्य यही है कि वह अपनी सम्पत्ति परोपकार के लिए समझे और आप उससे अलहदा रहता हुआ अपने को उसका ट्रस्टी अनुभव करे।

१५. द्रव्य के साथ क्लेश बढता है।

१६ जब से मानव-समाज मे सग्रह-परायणता जागी है तब से ससार की दयनीय दशा आरभ हुई है।

१७ सिक्के की वृद्धि के साथ अशाति की वृद्धि हुई है। सिक्का सग्रह करने की मनोवृत्ति ने अशान्ति का पोषण किया है।

१८. आत्मा को धन का गुलाम मत बनाओ। जो इस सत्य को समझ लेगा वह धन का दास नही बनेगा, धन का स्वामी बनेगा।

१९ धन को साध्य नही, साधन मात्र समझो। धन के लिये जीवन बर्बाद न करो किन्तु जीवन के उत्कर्ष साधन में धन को भी निमित्त बनाओ।

२०, धन को साधन मानकर, उसके प्रति निर्मम बनना, उसे आत्मा को न ग्रसने देना, इतनी

महत्त्व की वात है कि उसके विना जीवन का अभ्युदय नही हो सकता ।

२१. वह सम्पत्ति सफल है जो ससार के कल्याण का साधन वनती है ।

२२ पूंजी को पकड कर मत वैठे रहो । ऐसा करने से इस लोक मे भी दु ख मिलेगा और परलोक मे भी ।

२३. जो सामग्री तुम्हे प्राप्त है उसका सदुपयोग करके आत्म-कल्याण का पथ प्रशस्त करो ।

२४ अगर आप धन के सेवक नही हैं तो भगवान् की सेवा कर सकते हैं और यदि धन के सेवक हैं तो फिर भगवान् के सेवक नही वन सकते ।

२५. धन को परमात्मा के समान मानने वाले अर्थ-लोलुप लोगो की वदौलत ही यह संसार दु खी वना हुआ है ।

२६. अर्थ-लोभी व्यक्ति प्राय संसार का अहित करने मे प्रवृत्त रहता है ।

२७. सम्पत्ति के लिए जीवन मत हारो। जीवन को सम्पत्ति के लिए मत समझो।

२८. आप लोगो के पास जो द्रव्य है, उसे अगर परोपकार मे, सार्वजनिक हित में और दीन-दुखियो को साता पहुँचाने में न लगाया तो याद रखना उसका व्याज चुकाना भी तुम्हे कठिन हो जायेगा।

(३४) अल्पारंभ-महारंभ

१ अल्पारभ से भी छूटने की भावना रखो। कदाचित् अल्प-आरभ से न वच सको, तो महा-आरभ से अवश्य ही वचो।

२. जव क्रिया मात्र का त्याग करना सम्भव न हो तो पहले उस क्रिया का त्याग करना उचित है, जिससे अधिक पाप होता है।

३. जिस कपड़े मे चर्वी लगी हो, वह आरम्भ की दृष्टि से पहले त्याज्य है।

(३५) कषाय

१. जो मनुष्य मैत्रीपूर्ण आचार और विवेक-

पूर्ण विचार द्वारा कषाय को जीतने का प्रयत्न करत है, वह कषाय को जीत सकता है और विश्व मे शान्ति भी स्थापित कर सकता है।

२ काम, क्रोध आदि कषाय कुत्ते के समान हैं इन्हे पहले तो 'घर' मे घुसने ही नही देना चाहिये कदाचित् घुस पड़े तो उसी समय बाहर निकाल देन चाहिए।

३. एक विकार ही दूसरे विकार का जनक होता है। आत्मा जब पूर्ण निर्विकार दशा प्राप्त कर लेता है, तब विकार का कारण न रहने से उसमे विकार उत्पन्न होना असम्भव है।

(३६) क्रोध

१ जैसे अग्नि थोडे ही समय मे रुई के ढेर को भस्म कर देती है उसी प्रकार क्रोध भी आत्मा के समस्त शुभ गुणो को भस्म कर देता है।

२ क्रोध उत्पन्न होने पर मनुष्य आखे होते हुए भी अन्धा बन जाता है।

३ क्रोधविजयी पुरुष ही लोकप्रिय बन सकता है।

(३७) मान

१. अभिमान करना बहुत बुरा है। अभिमानी व्यक्ति को अपमान का दुःख भोगना पडता है और अभिमान का त्याग करने वाले को सम्मान मिलता है।

२ अहंकार बुद्धि आत्मा के हित की किसी बात का ध्यान नही रखती। वह सीधी बात को उल्टी और उल्टी को सीधी बतलाती है।

३. दूसरे के अधिकार का अपहरण करके यश प्राप्त करने की इच्छा मत करो।

४. मिथ्याभिमान जीवन का अपकर्ष और धर्माभिमान उत्कर्ष करने वाला है।

(३८) माया-सरलता

१. भले आदमी के लिए उचित है कि वह अपनी ही किसी बात के लिए हठ पकड कर न बैठ

जाय। विवेक के साथ पूर्वापर का विचार करना और दूसरे के दृष्टिकोण को सहृदयता के साथ समझना आवश्यक है।

२. बुद्धिमत्ता का ढोग छोडकर अगर आप अपने अन्त करण में बाल सुलभ सरलता उत्पन्न करलें तो कल्याण आपके सामने उपस्थित हो जायगा।

३ जैसे बालक कपटरहित होकर माता-पिता के सामने सब बात खोलकर कह देता है, उसी प्रकार जो पुरुष अपना समस्त व्यवहार निष्कपट होकर करता है, वही वास्तव मे धर्म की आराधना कर सकता है।

४. जब तक आत्मा और परमात्मा के बीच कपट का व्यवधान है तब तक आत्मा, परमात्मा नही बन सकता। पारस और लोहे के बीच जरा-सा अन्तर हो तो पारस, लोहे को सोना कैसे बना सकता है ?

५. कपट नीति से काम लेने वाले की विजय कभी-न-कभी पराजय के रूप मे परिणत हुए बिना नही रहेगी।

(३९) लोभ

१ लोभ का कही अन्त ही नही है। ज्यो-ज्यों धन वढता जाता है, त्यो-त्यो लोभ भी वढता जाता है और ज्यो-ज्यो लोभ वढता जाता है त्यो-त्यो पाप का पोषरण होता जाता है।

२. सग्रहपरायणता सव पापो का मूल है।

३ काक्षा या कामना एक ऐसा विकार है, जिसके ससर्ग से तपस्वियो की घोर तपस्या और धर्मात्माश्रो के कठोर से कठोर धर्मानुष्ठान भी कलकित हो जाते है।

४ लोभ का कही अन्त नही है और जहाँ लोभ होता है वहाँ पाप का पोषरण होता है।

(४०) क्षमा

१. क्षमा का आदान-प्रदान करने से चित्त मे प्रसन्नता होती है। चित्त की प्रसन्नता से भाव की विशुद्धि होती है।

२. वाहर से क्षमाभाव प्रदर्शित करो और

भीतर वैरभाव चालू रखो तो यह सच्ची क्षमापना नही है।

३. वैर से वैर कभी शान्त नही हो सकता। अतएव वैर पर अवैरवृत्ति से विजय प्राप्त करना चाहिए।

४ क्षमा (पृथ्वी) प्रत्येक वस्तु को आधार देती है, इसी प्रकार क्षमा भी प्रत्येक छोटे-वडे गुण को आधार देती है।

५. क्षमा के विना वास्तव मे कोई भी गुण नही टिक सकता। मोक्ष के मार्ग पर चलने मे क्षमा पाथेय के समान तो है ही, ससार-व्यवहार मे भी क्षमा की अत्यन्त आवश्यकता है।

६ क्षमा निर्वलो का नही वरन् सवलो का भी अमोघ शस्त्र है और वीर पुरुषो का आभूपण है।

७. चाहे आपका शत्रु अपनी ओर से शत्रुता का त्याग करे या नही, मगर आपको अपनी ओर से शत्रुता का त्याग कर देना चाहिए।

८. सच्चा पिता वही कहलाएगा जो अवोध

बालक द्वारा पहुँचाये हुए कष्ट को शात भाव से सहन कर लेता है और बदला लेने की मलिन भावना से बालक को कष्ट नही पहुंचाता । इसी प्रकार वीर पुरुष वह है जो अज्ञान पुरुषो द्वारा दिये हुए कष्टो को शाति से सहन करता है और हृदय मे बदला लेने की भावना ही उत्पन्न नही होने देता ।

९ अधिकारो के अपहरण के कारण जिन्हे घोर दु ख पहुचा है । उन लोगो को उनके उचित अधिकार न लौटाकर, ऊपर से क्षमा माग लेना उचित नही है । ऐसा करना सच्ची क्षमायाचना नही है ।

१० वैर से ही वैर बढता है । आपके हृदय का वैर आपके शत्रु को वैराग्नि का ईधन है । जब उसे ईधन नही मिलेगा तो वह आग कब तक जलती रहेगी ? आज नही तो कल अवश्य बुझ जाएगी ।

११ तलवार की शक्ति राक्षसो के लिए काम मे आती है । देवी प्रकृति वाली प्रजा मे तो प्रेम ही अपूर्व प्रभाव डालता है ।

(४१) दान

१ दान, धर्म उत्पन्न होने की भूमि है। दान से ही धर्म होता है।

२ अपने आपको दानी के रूप मे प्रसिद्ध करने के लिए जो दान दिया जाता है, वह दान नही है; व्यापार है।

३. जो लोग अपने दान का ढढोरा पीटते हैं वे दान के असली फल से वंचित हो जाते हैं। अतएव न तो दान की प्रसिद्धि चाहो और न दान देकर अभिमान करो।

४. हे दानी ! तू दान के बदले कीर्ति और प्रतिष्ठा खरीदने का विचार मतकर। अगर तेरे अन्तःकरण मे ऐसा विचार उत्पन्न हुआ है तो समझ ले कि तेरा दान, दान नही है, व्यापार है।

५, निष्काम भाव से दान देने से भूसे के समान कीर्ति आदि आनुषगिक फल मिल ही जाते हैं, पर इन्ही फलो की प्राप्ति के लिये दान देना विवेकशीलता नही है।

६ लोग सवेरे दान करके शाम को दान का फल प्राप्त करना चाहते है। मगर फल के लिए अधीर हो उठने से पूरा और वास्तविक फल मिलता ही नही है। फल की कामना फल प्राप्ति मे बडी भारी वाधा है।

७. अपने दान के वदले न स्वर्ग-सुख की अभिलाषा करो, न दानीय पुरुष की सेवाओ की आकाक्षा करो, न यशकीर्ति खरीदो और न उसे अहकार की खुराक बनाओ।

८ लक्ष्मी उसी का आश्रय लेती है जो स्वामी वनकर उसका पालन करे। दास वनने वालो पर लक्ष्मी पूरी तरह नही रीझती और लक्ष्मी का स्वामी वनने का अर्थ यही है कि उससे दूसरो की सेवा की जाय। सुपात्र दान देना, परोपकार मे उसका व्यय करना, आसक्ति न रखना, ये लक्ष्मीपति के लक्षण है।

९ दान देने से धन मे कमी हो जाती है, यह विचार भ्रमपूर्ण है।

१० कोई दीन–दु खिया जव किसी के द्वार पर भीख मागने आता है तव प्राय: उसे डांट कर कहा जाता है—'चल हट यहा से यह क्या तेरे वाप की धरोहरी धरी

है ?' ऐसा कहने वाले लोगो से पवन भी कदाचित् यही कह दे तो कैसी बीते ?

११. गरीब अगर अपनी एक रोटी में से एक छोटा सा टुकडा भी दान कर देता है तो उसका दान धन्य है। श्रीमान् के लाखो करोड़ो रुपयो की अपेक्षा उस गरीब की रोटी के एक टुकड़े का दान अधिक महत्त्व-शाली है।

१२. हे गरीब। तू क्यो चिन्ता करता है ? जिसके शरीर पर अधिक कीचड लगा होगा, वह उतना ही अधिक उसे छुडाने का प्रयत्न करेगा। तू भाग्यशाली है कि तेरे शरीर मे कीचड अधिक नही लगा है।

१३. तुम्हारे पास धन नही है तो चिन्ता करने की क्या बात है ? धन से बढकर विद्या, बुद्धि, बल आदि अनेक वस्तुएँ हैं। तुम उनका दान करो। धनदान से विद्यादान और बलदान क्या कम प्रशस्त हैं ?

१४. गेंद की तरह सम्पत्ति का आदान-प्रदान करते रहोगे तो जैसे फेंकी हुई गेद लौट कर फेंकने वाले के पास आती है, उसी तरह दूसरे को देते रहने पर,

त्याग करने पर, सम्पत्ति लौट-लौट कर तुम्हारे पास आएगी ।

१५ ससार की माया (धन-दौलत) गेंद के समान है । अगर खिलाडी की तरह इसे देते रहे तब तो ठीक है—खेल चलता रहेगा, अगर इसे पकडकर बैठ गये तो खेल भी बन्द हो जाएगा और धप्पे भी खाने पडेंगे ।

१६ जब तुम किसी को कुछ दो तो उसकी आबरू लेकर मत दो ।

१७ जो पुरुष पुद्गलो का स्वरूप जानता है, जिसे पुण्य और पाप का विवेक है, वह कृपण नही बन सकता ।

(४२) शील

१ बुरे कामो से निवृत्त होना और अच्छे कामों मे प्रवृत्त होना शील है ।

२ सादगी मे ही शील का वास है ।

३. जो भद्र पुरुष शीलमंत्र को भली-भाति सीख

लेगा, जो इस मत्र की आराधना करेगा, उसे अद्‌भुत आनन्द प्राप्त होगा।

४. विलासिता बढाने वाली सामग्री महापाप का कारण है। वह विलासी को भी भ्रष्ट करती है और दूसरो को भी।

५. शरीर का सिंगार आत्मा को कलकित करता है। तुम्हारी सच्ची महत्ता और पूजा शील से ही होगी।

६. जिन्हे मनुष्यत्व का वास्तविक और सहज आभूषण प्राप्त नही है, वे लोग ऊपर से आभूषण लाद कर अपने आपको आभूषित घोषित करते हैं।

७. मौज-शौक वाला जीवन जल्दी नष्ट हो जाता है। ऐसा जीवन काच के खिलौने के समान है, जिसके टूटने मे देर नही लगती।

८. सादा जीवन हीरे के समान है जो घनो की चोट सहने पर भी अखण्ड रहता है।

९. सुन्दर से सुन्दर विचार भी जीवन मे परिणत किये विना लाभदायक नही हो सकते।

१०. मनुष्य की प्रतिष्ठा उसके सद्गुणों पर ही अवलंबित रहनी चाहिये। धन से प्रतिष्ठा का दिखावा करना मानवीय सद्गुणो के दिवालियापन की घोषणा करने के समान है।

११. दूसरे के किसी सद्गुण की प्रशसा करना अच्छा है, परन्तु उसे अपने जीवन मे उतारने की प्रवल चेष्टा करना उससे भी अच्छा है।

१२. जिस अन्याय का प्रतिकार करने मे तुम असमर्थ हो, कम-से-कम उसमे सहायक तो न वनो। अन्याय से अपने आपको पृथक् रखो।

(४३) तप

१ तप एक प्रकार की अग्नि है जिसमें समस्त अपवित्रता, सम्पूर्ण कल्मष एवं समग्र अशाति भस्म हो जाती है।

२. तप से शरीर भले ही दुर्वल प्रतीत हो, मगर आत्मा असाधारण वलशाली वन जाती है।

३ तप से शरीर क्षीण होता है, यह धारणा

श्रमपूर्ण है। तपस्या करने से शरीर निरोग और अच्छा रहता है।

४. जो क्रियाकाण्ड सिर्फ शरीर शोषण करता है, आत्मपोषण नही करता अर्थात् आत्मिक गुणो के विकास मे जरा भी सहायक नही होता, वह आध्यात्मिक दृष्टि से निष्प्रयोजन है।

५. यह ठीक है कि अज्ञानपूर्वक सहन किया गया कष्ट मुक्ति का कारण नही है, मगर वह भी सर्वथा निष्फल नही जाता। उस कष्ट का फल देवलोक है।

६. जिसका मन रजोगुण और तमोगुण से अतीत हो जाय, या त्रिगुणातीत हो जाय समझना चाहिये कि वह सच्चा तपस्वी है और उसका मन निर्मल है।

७ तप के अभाव मे सदाचार भ्रष्ट हो जाता है।

८. स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहने का परिणाम मधुर होता है और अनिच्छा से कष्ट सहने का नतीजा कटु होता है।

(४४) भावना

१. भावना एक ऐसा अनोखा यत्र है, जिसमे घोर दुख भी सुख का रूप धारण कर लेता है। वह वेदना की विकृति को निकाल फेंकता है।

२ धर्म कोई वाहर की वस्तु नही है। वह अन्दर से पैदा होता है।

३. जो अपने पापो को स्वच्छ हृदय से प्रकट करके पवित्र वन जाता है, वह परमात्मा को प्यारा लगता है।

४ विवेक के साथ विचार करने में ही मानवीय मस्तिष्क की शोभा है।

५ धर्म-भावना मनुष्य को घवराने से रोकती है और कठोर से कठोर प्रसग पर भी शान्त चित्त रहने की प्रेरणा करती है।

६. धर्मसय भावना का आन्तरिक आदेश प्रत्येक परिस्थिति को समभाव से स्वीकार करने की क्षमता प्रदान करता है।

३. समस्त प्राणियो मे ईश्वर विराजमान है। प्राणियो की सेवा करना ईश्वर की सेवा है। जिस मनुष्य मे इतना ज्ञान नही वह पशु से भी गया बीता है।

४. जो मनुष्य किसी प्रकार के दुर्भाव या घृणा-भाव को पास नही फटकने देता और जनसेवा को परमात्मा की सेवा मानकर निरन्तर सेवा मे सलग्न रहता है, वह महान् लाभ प्राप्त करता है।

५ वास्तव मे अखिल ससार सेवा के सहारे टिका हुआ है। ससार मे जव सेवा भावना कम हो जाती है तव उत्पात होने लगता है और जव सेवा-भावना का उत्कर्ष होता है, तो ससार स्वर्ग वन जाता है।

६. अपने मनुष्यत्व को सार्थक करने के लिये जो सव प्राणियो की सेवा करता है, वह देवत्व को प्राप्त करके अक्षय और असीम कल्याण का भाजन वनता है।

७. सेवा आत्मा और परमात्मा के वीच सम्वन्ध जोडने वाली श्रृंखला है।

८. मानव-शक्ति की सार्थकता इसी मे है कि

वह दीनहीन जनो की सेवा करने के समय घर मे ही घुसकर न बैठा रहे ।

९ उपकार समझकर नही वरन् कर्त्तव्य समझकर सेवा करो । ऐसा करने से तुम्हारे चित्त मे अहंकार नही जनमेगा ।

१० वैयावृत्य (सेवा) करने वाले व्यक्ति के आगे देव भी नत-मस्तक हो जाते हैं तो साधारण लोग अगर सेवाभावी को नमस्कार करें तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ?

११ जो सेवक निष्काम होता है, वेलाग रहता है, उसकी सेवा से सभी वश मे हो जाते हैं, भले ही वह ईश्वर ही क्यो न हो ।

१२. सेवा का उत्कृष्ट फल तीर्थङ्कर पद की प्राप्ति होना है । सेवा से जीवन सर्वगुण सम्पन्न वनता है ।

१३ आप पापी का उद्धार करके उसे निष्पाप वनाने की चेष्टा कीजिए । यह आपकी सवसे वडी धर्म-सेवा होगी ।

१४. निष्काम भावना और सच्चे हृदय से की हुई सेवा कभी भी व्यर्थ नही होती। उसका प्रभाव दूसरो पर पड़े विना नही रहता।

१५ जो जन-समाज की अधिक से अधिक सेवा करते हैं वे ही सच्चे श्रीमन्त हैं और उनकी सच्ची श्रीमन्ताई जगत् के लिए हितकारक है।

१६. दान और पूजा की अपेक्षा रखकर की गई सेवा, सेवा नही, व्यवसाय है।

(४६) उपकार

१. जो परोपकार करता है वह आत्मोपकार करता है।

२ जो मनुष्य केवल अपना ही स्वार्थ देखता है, वह अपने स्वार्थ का नाश करता है। इसके विपरीत, जो दूसरो का उपकार करता है, वह अपना ही उपकार करता है।

३ जैसे आप अपने बेटे की चिन्ता करते हैं,

उसी प्रकार उदार भाव वाले ज्ञानी पुरुष प्रत्येक जीव की चिन्ता करते हैं।

४. जगत् उसी को वन्दना करता है जो जगत् के आघात सहन करता हुआ भी जगत् के उपकार मे ही अपना सर्वस्व लगा देता है।

५. वुद्धिमान पुरुष अपने निजी स्वार्थ की सिद्धि के लिए जगत् का अहित नही चाहता।

६ कभी न भूलो कि दान देकर तुम दानीय व्यक्ति का जितना उपकार करते हो, उससे कही अधिक दानीय व्यक्ति तुम्हारा (दाता का) उपकार करता है। वह तुम्हे दान धर्म के पालन का सुअवसर देता है, वह तुम्हारे ममत्व को घटाने या हटाने मे निमित्त बनता है। अतएव वह तुमसे उपकृत है तो तुम भी उससे कम उपकृत नही हो।

७. मत भूलो कि आज जो लखपति है, वही कल कगाल हो जाता है। फिर परोपकार करने मे क्यो कृपण बनते हो? कृपणता करके बचाया हुआ धन साथ नही जायगा, किन्तु कृपणता के द्वारा लगने वाला पाप साथ जायेगा।

८ दूसरे के कल्याण के लिए पिया जाने वाला जहर पीने से पहले ही जहर जान पडता है और उसका पीना कठिन भी होता है, परन्तु पीने के पश्चात् वह अमृत वन जाता है और पीने वाले को अमर वना देता है।

(४७) व्रतपालन

१. संकट के समय व्रत का स्मरण कराने वाली, व्रतपालन के लिए वारम्वार प्रेरित करने वाली और प्रवल प्रलोभनो के समय संयम का मार्ग समझाने वाली प्रतिज्ञा हमारा सच्चा मित्र है।

२. व्रतपालन की प्रतिज्ञा संकट के समय सवल मित्र का काम देती है। प्रतिज्ञा अध पतन से वचाती है और धर्म का सच्चा मार्ग वतलाती है।

३. विपदाओ के पहाड टूट पडें, खाने-पीने के फाके पड़ते हो, तव भी जो धीर-वीर पुरुप अपनी उदार प्रकृति को स्थिर रखता है, अपने सदाचार से तिलभर भी नही डिगता, वह सच्चा सुव्रती कहलाता है।

४. अगर तुम अपना जीवन सफल बनाना चाहो तो व्रतपालन मे दृढ रहो।

५. न्यायवृत्ति रखना और प्रामाणिक रहना, यह सुव्रतियो का मुद्रालेख है। यह मुद्रालेख उन्हे प्राणो से भी अधिक प्रिय होता है।

६. सुव्रती अन्याय के खिलाफ अलख जगाता है। वह न स्वय अन्याय करता है और न सामने होने वाले अन्याय को टुकुर-टुकुर देखता रहता है।

(४८) आहार

१. अधिक भोजन करने से स्वास्थ्य सुधरने के बदले बिगडता है।

२. विकृत भोजन करने से स्वास्थ्य को हानि पहुचती है और चरित्र को भी।

३. जो मनुष्य अपनी जीभ पर कावू रखता है उसे प्राय: वैद्यो और डॉक्टरो के द्वार पर भटकने की आवश्यकता नही रहती।

४. अधिक गरिष्ठ, तेज मसालेदार और परिमाण से अधिक भोजन सर्वथा हानिकारक है।

५. ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए, साथ ही स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जिह्वा पर अकुश रखने की बहुत आवश्यकता है।

६. ब्रह्मचर्य की साधना करने वालो को ऐसा और इतना ही भोजन करना चाहिए जिससे शरीर की रक्षा हो सके और ब्रह्मचर्य मे बाधक न होकर, साधक हो।

७. जैसा आहार वैसा विचार, उच्चार और व्यवहार।

८ भूख मे लड्डू सुख देने वाले मालूम पडते हैं, लेकिन भूख मिट जाने पर वे ही लड्डू आपको जबरदस्ती मार-मार कर खिलाए जाएँ तो कैसे लगेगे, जहर सरीखे।

(४६) पुरुषार्थ

१. कर्म तुम्हारे बनाये हुए हैं, कर्मों के बनाये तुम नही हो। फिर तुम इतने कायर क्यो हो रहे हो कि

अपने बनाए हुए कर्मों से आप ही भयभीत होते हो। कर्म तुम्हारे खेल के खिलौने हैं। तुम कर्मों के खिलौने नही हो।

२. तुम्ही कर्म के कर्त्ता और तुम्ही कर्म के भोक्ता हो। स्वय अपना सुधार और विगाड कर सकते हो।

३ होनहार के भरोसे पुरुषार्थ त्याग देना उचित नही है। पुरुषार्थ के बिना कार्य की सिद्धि नही होती।

४ पुरुषार्थ करने से कुछ न कुछ फल निकल सकता है, मगर रोना तो अपने आपको डुबाना ही है।

५ तुम भाग्य के खिलौना नही हो वरन् भाग्य के निर्माता हो। आज का तुम्हारा पुरुषार्थ कल भाग्य बन कर सखा की भांति सहायक होगा।

६ सच्चा पुरुषार्थी कभी हार नही मानता। वह अगर असफल भी होता है तो उसकी असफलता ही उसे सफलता प्राप्त करने की प्रेरणा करती है।

७ उत्साही पुरुष पर्याप्त साधनो के अभाव मे

भी, अपने तीव्र उत्साह से कठिन से कठिन कार्य भी साध लेता है।

८. जो कदम आगे रख दिया है उसे पीछे मत हटाओ तभी विजयी होओगे।

९ लोग क्रिया से मुह मोडकर पुरुषार्थ हीन वन रहे है। स्वय परिश्रम न करके दूसरो के परिश्रम पर गुलछर्रे उडाना चाहते है, यही लडाई-झगडे का वीज है।

१०. तुम्हारे दोनो हाथो मे से एक मे नरक की और दूसरे मे स्वर्ग की चावी है। जिसका द्वार खोलना चाहो, खोल सकते हो।

११ जिन गुणो को सिद्ध प्राप्त कर सके हैं, उन्हे हम भी पा सकते हैं।

१२. परमात्मा से मिलने की तडप प्रत्येक मे सनातन काल से विद्यमान है। उसे फलीभूत करने का पुरुषार्थ करना आत्मा का परम कर्त्तव्य है।

१३. मुक्ति का मार्ग लम्वा है और कठिन भी

है, यह सोचकर उस ओर पैर ही न बढाना एक प्रकार की कायरता है।

१४ मार्ग कितना ही लम्बा क्यो न हो, अगर धीरे-धीरे भी उसी दिशा मे चला जायगा तो एक दिन वह तय हो ही जायगा, क्योंकि काल भी अनन्त है और आत्मा की शक्ति भी अनन्त है।

१५ अगर हम आलसी होकर बैठे रहेगे तो आत्म-विकास कैसे कर सकेंगे ? साथ ही एक दम छलांग मार कर ऊपर चढने का प्रयत्न करेंगे तो नीचे गिरने का भय है। अतएव मध्यम मार्ग का अवलम्बन करके क्रम-पूर्वक आत्म-विकास करना ही श्रेयस्कर है।

१६ जैसे दूध मे से घी अलग किया जा सकता है, उसी प्रकार पुरुषार्थ द्वारा आत्मा और कर्मो का भी पृथक्करण हो सकता है।

१७ धर्म, परिश्रम त्याग कर परिश्रम के फल को अनायास भोगने का उपदेश नही देता। धर्म अकर्मण्यता नही सिखाता। धर्म हरामखोरी का विरोध करता है और हक के खाने का विधान करता है।

१८. मेहनत-मजूरी करके उदर-पोषण करने मे

न लज्जा है, न और कोई बुराई है। लज्जा की बात तो मांगकर खाना है।

१९ जो अपने हाथ से काम नही करता, आलस्य मे पडा रहता है, वह अपनी अन्यान्य शक्तियो के साथ शारीरिक शक्ति को भी खो बैठता है।

२०. पग-पग पर दूसरो की सहायता मांगना, बात-बात मे पराया मुँह ताकना एक प्रकार का भिखारीपन है। भिखारी कभी सुखी नही होता।

२१. सच्चा साहूकार वह है जो अनायास प्राप्त सहायता को भी ठुकरा देता है और अपने बूते पर खड़ा रहता है, अपने ही पुरुषार्थ का भरोसा रखता है।

२२ जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है वह हमारे ही प्रयत्नो का फल है। हमारे ही प्रयत्न से उसका अन्त होगा। दीन बनकर दूसरे का आश्रय लेने से कुछ हासिल होने वाला नही है।

२३. तू अपनी तरफ से जो करता है, वह किये जा। दूसरो का विचार मत कर।

२४ ज्ञानी मन की असफलता उद्योग की मात्रा मे वृद्धि करने की प्रेरणा करती है।

२५. प्रभु से प्रार्थना करो—हे दीनवन्धु ! बिना काम किये हराम का खाने का विचार तक मेरे मन में न आवे। अधिक काम करके थोडा लेने की ही मेरी भावना वनी रहे।

२६ वह प्रजा नपुसक है, जो अन्याय को चुपचाप सहन कर लेती है और उसके विरुद्ध चू तक नही करती। ऐसी प्रजा अपना ही नाश नही करती परन्तु उस राजा के नाश का भी कारण वन जाती है, जिसकी वह प्रजा है।

२७. ऋद्धि का बीज पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ करने वाले ही ऋद्धि के पात्र वनते हैं।

२८ झरना हमे सिखलता है कि निरन्तर प्रगति करना ही जीवन का चिह्न है और जडता मृत्यु की निशानी है।

२९ आपत्ति के डर से किसी काम मे हाथ न डालना कोई बुद्धिमत्ता नही है। कार्य करते समय हानि-

लाभ का विचार अवश्य कर लेना चाहिए, पर प्रारम्भ से ही किसी कार्य को शका की दृष्टि से नही देखना चाहिए।

३०. वर्तमान जीवन स्वल्पकालीन है और भविष्य का जीवन अनन्त है। इसलिए हे भद्र पुरुष, वर्तमान के लिए ही यत्न न कर, किन्तु भविष्य को मगलमय बनाने की भी चेष्टा कर।

३१ अनेक जन्म-जन्मान्तरो के पश्चात् भी सिद्धि प्राप्त की जा सकती है, अतएव पुरुषार्थ करते रहना चाहिए।

३२ जैसे काल का अन्त नही है वैसे ही आत्मा का भी अत नही है। यह बात जानते हुए भी दो दिन टिकने वाली चीज के लिए प्रयत्न करना और अनन्त काल तक रहने वाले आत्मा के लिए कुछ भी प्रयत्न न करना कितनी गम्भीर भूल है?

३३ आत्मा की शक्तियाँ बन्धन मे हैं। उन पर आवरण है। आवरण को हटा देना ही मोक्ष है। मगर इसके लिए निश्चल श्रद्धा और प्रबलतर पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

(५०) गृहस्थ-धर्म

१. वे गृहस्थ धन्य हैं जिनके हृदय मे दया का वास रहता है और दु.खी को देखकर अनुकम्पा उत्पन्न होती है।

२. अगर आप अपने परिवार मे शान्ति और प्रेम का वायु मण्डल कायम रखना चाहते हैं तो अणु-मात्र भी पक्षपात को हृदय मे न घुसने दो।

३ जहाँ वस्तु का समान रूप से विभाग नही होता वहा क्लेश होने की सम्भावना रहती है और जहा क्लेश हुआ वहा परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है।

४ भोग के कीड़े सिंह पैदा नही कर सकते। जिन्हे सचमुच सबल और वीर्यवान् सन्तान की कामना हो, उन्हे ब्रह्मचर्य का समुचित पालन करना चाहिए।

५. पत्नी का पति के प्रति जो अनुराग होता है, उसी अनुराग को अगर आगे बढाकर परमात्मा के साथ जोड दिया जाय तो वह वीतरागता के रूप मे परिणत हो जाता है और आत्मा को तार देता है।

६ धर्म, अन्याय आचरण का विरोध करता है,

लेकिन गृहस्थो के लिए न्याय युक्त आचरण से धनो-पार्जन का निषेध नही करता।

७. घूंघट काढ लेना असली लज्जा नही है। असली लज्जा है—पर पुरुष को भ्राता और पुत्र समझना तथा वैसा ही उनके साथ व्यवहार करना।

८. इतना अधिक खर्च मत रखो जिससे तुम्हें कर्ज लेना पडे।

९ जिस दिन भूतदया की भावना से आपका हृदय पूत होगा, उस दिन आप हिंसाजनक वस्त्रो और अन्य वस्तुओ का उपयोग करना छोड़ देंगे।

(५१) जीवन-धर्म

१ जीवन-धर्म का मर्म है आत्मा को पहचानना।

२ जीवन-धर्म का आदर्श है—विकारों को जीतना और विश्व बन्धुता सीखना।

३ अनजाने को जानना, जाने हुए की खोज

करना और खोजे हुए को जीवन मे उतारना, यह जीवन-शुद्धि का मार्ग है।

४ बुद्धि सिद्धान्त और जीवन सिद्धान्त अलग-अलग वस्तुए हैं। अतएव बुद्धि के सिद्धान्त के साथ जीवन के सिद्धान्त का भी उपयोग करना चाहिए।

५ सब नये नियम खराब ही होते है या सब पुराने नियम अच्छे ही होते है, यह कोई निश्चित नियम नही है। जो नियम जीवन मे प्राण पूरने वाला हो, उसे कायम रखकर, जीवन विघातक तत्त्वो को दूर करने मे ही कल्याण है।

६ केवल धन के उपार्जन और रक्षण मे न लगे रहो। मनुष्य-जीवन जड पदार्थों की उपासना के लिए नही है। दया-दान की ओर ध्यान दो।

७ जीवित रहना अच्छा है मगर धर्म के साथ।

(५२) बन्धुत्व

१. व्यक्ति जब तक अपने ही सुख को सुख मानता रहेगा, जब तक उसमे दूसरे के दु ख को अपना

दुःख मानने की सवेदना जागृत न होगी, तब तक उसके जीवन का विकास नही हो सकता ।

२. व्यक्ति की अपेक्षा उस समूह का, जिसमे वह स्वय भी सम्मिलित है, सदैव अधिक मूल्य ठहरेगा ।

३. एक व्यक्ति की रक्षा की अपेक्षा सम्पूर्ण विश्व की रक्षा का कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण, उपयोगी और श्रेयस्कर है ।

४. प्रत्येक प्राणी को अपनी आत्मा के समान समझकर आत्मौपम्य भावना की उन्नति मे ही मानव-समाज की सच्ची उन्नति है ।

५. अपनी आत्मीयता की सीमा क्षुद्र मत रहने दो । तत्त्व दृष्टि से देखोगे तो पता चलेगा कि अन्य जीवो मे और आपके अपने माने हुए लोगो मे कोई अन्तर नही है ।

६ अहिसा भगवती ही बन्धुत्व का अमृत संचार कर सकती है ।

७ अहिसा माता के अतिरिक्त और किसी का सामर्थ्य नही कि वह बन्धुभाव का प्रादुर्भाव कर सके और

आत्मीयता का सम्बन्ध विभिन्न राष्ट्रो एव विभिन्न जातियो मे स्थापित कर सके।

८ विभिन्न-विभिन्न समयो मे जन्म लेने वाले व्यक्ति एक ही माता के हृदय का रसपान करके सहोदर बन जाते हैं, इसी प्रकार विभिन्न राष्ट्रो के मानव जिस दिन एक अहिसा माता का रसपान करेंगे, उसी दिन वे सहोदर बन सकेंगे।

९. पापी को अपनाना ही उसके पाप को नष्ट करना है। घृणा करने से उसके पाप का अन्त आना कठिन है। अगर उसे आत्मीय भाव से ग्रहण करोगे तो उसका सुधार होना सरल होगा।

(५३) विवाह

१. दम्पती का सम्बन्ध एक दूसरे को सहायता देकर उन्हे आत्म-कल्याण की साधना मे समर्थ बनाने के लिए है।

२. विवाहित जीवन की सफलता इसी में है कि पति और पत्नी आत्मीयता के क्षेत्र को विशाल से

विशालतर वनाते जाए और अन्त में प्राणिमात्र पर उसे फैला दें।

३ सच्चा पति वही है जो पत्नी को पवित्र वनाता है।

४. सच्ची पत्नी वही है जो अपने पति को पवित्र वनाती है।

५ जो अपने दाम्पत्य जीवन को पवित्र वनाते है, वे सच्चे पति-पत्नी हैं।

६ विवाह, गृहस्थी मे रहने वालों को पारस्परिक धर्म सम्वन्धी सहायता आदान-प्रदान करने के लिए होता है, धर्म का ध्वस करने के लिए नही, वन्धनों की परम्परा वढाने के लिए भी नही।

७ विवाह का उद्देश्य चतुष्पद वनना नही, चतुर्भुज वनना है।

८ विवाह पाशविकता का पोपरण नही करता, उसे सामर्थ्य का पोपक होना चाहिए।

९ पति और पत्नी मिलकर दम्पती है। दोनों

मे एकरूपता है। दम्पती के वीच अधिकारो को लेने की समस्या ही खडी नही होती। वहा समर्पण की भावना ही प्रधान है।

१०. विवाह न करके अनीति की राह पर चलना वुरा है, पर ब्रह्मचर्य पालन करना वुरा नही है।

११. जो पुरुष, स्त्री को गुलाम वनाता है, वह स्वयं गुलाम वन जाता है। जो पुरुप स्त्री को 'देवी' वनाता है, वह 'देव' वन जाता है।

१२ जो स्त्री सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के सिवाय केवल विलास के लिए अपने पति को विलास मे फसाती है, वह स्त्री नही पिशाचिनी है। वह अपने पति के जीवन को चूसने वाली है।

१३. जो लोग परस्त्रीगमन का त्याग कर देते हैं, वे भी स्वस्त्री के विषय मे अपने आपको एकदम निरकुश रखते हैं, यह ठीक नही है। जो पराये घर की जूठन त्याग कर अपने घर मर्यादा से अधिक भोजन करता है, उसे क्या अजीर्ण नही होता ?

१४ परस्त्री-त्याग जैसे आवश्यक है, उसी प्रकार स्वस्त्री-सतोप भी आवश्यक है।

१५. विवाह मे जहा धन की प्रधानता होगी वहा अनमेल विवाह होना स्वाभाविक है।

१६ अनमेल विवाह करके दाम्पत्य जीवन मे सुख-शाति की आशा करना ऐसा ही है, जैसे नीम वोकर आम के फल की आशा करना।

१७ माता-पिता को चाहिये कि प्रतिकूल स्वभाव वाले के साथ अपनी कन्या का विवाह नही करे।

१८ लोभ के वश होकर अपनी संतान का विक्रय करके, उनका जीवन दु:खमय बनाना माता-पिता के लिए घोर कलक की वात है।

१९ विवाह दुर्विपय-भोग के लिए नही है, किन्तु व्रह्मचर्य पालन की कमजोरी को धीरे-धीरे मिटाकर, व्रह्मचर्य पालन की पूर्ण क्षमता प्राप्त करने के लिए ही है।

(५४) व्यक्ति और समाज

१ समाज मे व्यक्ति का वही स्थान है जो विशाल जलाशय मे एक जल-कण का होता है।

२ व्यक्ति, समष्टि का अग है। समष्टि अगर एक मशीन है तो व्यक्ति उसका एक पुर्जा है। समष्टि के हित मे ही व्यक्ति का हित निहित है।

३ प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह समष्टि के हित को सामने रखकर सत्प्रवृत्ति करे। इस प्रकार की सत्प्रवृत्ति मे ही मानव-जाति का मगल है।

४ जो मनुष्य अपने और अपने माने हुए कुटुम्ब के हित साधन मे ही तत्पर रहता है और प्राणिमात्र के हित का विचार तक नही करता वह नीतिज्ञ नही, नीतिघ्न है।

५ दूसरे की सहायता मे शक्ति खर्च करना, दूसरे के दुःख को अपना दुःख मानना और दूसरे के सुख को अपना सुख समझना, मनुष्य का आवश्यक कर्त्तव्य है। ईश्वर से प्रार्थना करो कि आपकी प्रकृति ऐसी बन जाय।

६ जिसने ममता का त्याग कर दिया हो वही व्यक्ति जन-समाज का कल्याण कर सकता है।

७. सच्चा श्रीमान् वही है जो अपने आश्रित

जनो को भी श्रीमान् कर देता है। परमात्मा अपने सेवक को भी परमात्मा बना देता है।

८ प्रत्येक व्यवस्था मे विकार का विष मिल ही जाता है, पर विद्वानो का कर्त्तव्य है कि वे किसी व्यवस्था को समूल नष्ट करने का प्रयत्न करने से पहले उसके अन्तस्तत्त्व का अन्वेषण करें और उसके विकारो को ही दूर करने की चेष्टा करे।

९ यदि छल-कपट करके धन लूट लेने को उन्नति मान लिया जाय तो कहना होगा—अभी हम उन्नति का अर्थ ही नही समझ पाये हैं।

(५५) अन्याय का प्रतीकार

१ अन्याय और अत्याचार का विरोध करने के लिए कदम न बढाया जाएगा तो ससार मे अन्याय का साम्राज्य फैल जाएगा और धर्म का पालन करना असम्भव हो जाएगा।

२ जो पुरुष शक्ति होते हुए भी अपने सामने अपराध होने देता है, जो अपराध का प्रतीकार नही करता, वह अपराध करने वाले के समान ही पापी है।

३. अत्याचार करना जैसे मानसिक दौर्बल्य है, वैसे ही कायरता धारण करके हृदय मे जलते हुए, ऊपर से अत्याचार सहन कर लेना भी मानसिक दौर्बल्य है।

४ सुव्रती अन्याय का प्रतीकार करने के लिए कटिवद्ध रहता है। अन्याय का प्रतीकार करने मे वह अपने प्राणो को हँसते-हँसते निछावर कर देता है। वह समाज और देश के चरणो मे अपने जीवन का वलिदान देकर भी न्याय की रक्षा करता है।

५ जो आत्म-रक्षा नही कर सकता, अपने आश्रित जनो की रक्षा नही कर सकता, वह इज्जत के साथ जीवित नही रह सकता। अपनी जान वचाने के लिए दूसरो का मुँह ताकना मनुष्यता नही, यहाँ तक कि पशुता भी नही है। पशु भी अपनी और अपने आश्रित की रक्षा करने का पूरा उद्योग करता है। कायरता मनुष्य का वडा कलक है। तेजस्वी पुरुष प्राण दे देता है पर कायरता नही दिखलाता।

६. यदि आप सच्ची शान्ति चाहते हैं तो अपने समग्र जीवन-क्रम का विचार करे और उसमे अशान्ति

पैदा करने वाले जितने अश हैं, उन्हे हटा दें। इससे आप, आपका परिवार, समाज और देश शान्ति प्राप्त करेगा।

(५६) गरीब

१ जव तक गरीव आपको प्यारे नही लगेंगे तव तक आप ईश्वर को प्यारे नही लगेंगे।

२ गरीवो पर घृणा आना ही नरक है।

३. अगर तुम्हारा कोई पडौसी दु खी है, तो इसमे तुम्हारा भी दोप है।

४. आप धनवान् हैं तो क्या हुआ, गरीवो का आपके ऊपर ऋण है।

५ सवलों द्वारा निर्वलो का सताया जाना ही सव झगडो का मूल है।

६. दीनता स्वयं एक व्याधि है। उसका आश्रय लेने से व्याधि कैसे मिट सकती है ?

(५७) माता-पिता का कर्त्तव्य

१. पुत्र को जन्म देना एक महान् उत्तरदायित्व अपने सिर पर लेना है।

२ जिसका वालकपन विगड गया उसका सारा जीवन विगड गया और जिसका वालकपन सुधर गया उसका सारा जीवन सुधर गया।

३. वालक को सस्कारी वनाने के लिए माता-पिता को स्वयं संस्कारी वनना चाहिए।

४ जिस वालक से देश, समाज और धर्म का उत्कर्ष सिद्ध न हो, उसका होना, न होना समान सा है।

५ वालक तो अपने माता-पिता का उत्तराधिकारी है। न केवल उनकी धन दौलत का, मगर उनके सद्‌गुणो एव दुर्गुणो का भी वह उत्तराधिकारी है। यह वात अगर मा-वाप की समझ मे आ जाय तो वालक का वहुत कुछ भला हो सकता है।

६. पुत्र को जन्म देकर उसे सुसस्कारी न वनाना घोर नैतिक अपराध है।

७. वालक के मस्तिष्क पर अधिक वोझ लादने से उसकी शक्तिया क्षीण हो जाती हैं और वह अल्पायुष्क हो जाता है।

(५८) सन्तान का कर्त्तव्य

१. माता-पिता का अपनी सन्तान पर असीम उपकार है। भला, जिन्होने तन दिया है, तन को पाल-पोस कर सवल किया है, जिन्होने अपना सर्वस्व सौप दिया है, उनके उपकार का प्रतीकार किस प्रकार किया जा सकता है ?

२. माता-पिता, पृथ्वी, अग्नि आदि से कुछ-न-कुछ सभी को ग्रहण करना पडता है। मगर जो ले तो लेता है किन्तु वदले मे कुछ देता नही है, वह पापी है।

३. मातृ-प्रेम के समान ससार मे और कोई प्रेम नही। मातृ-प्रेम ससार की सर्वोत्तम विभूति है, ससार का अमृत है। अतएव जव तक पुत्र गृहस्थ-जीवन से पृथक् होकर साधु नही वना है, तव तक माता उसके लिए देवता है।

(५६) स्वामी-सेवक

१. अपने आश्रितो से प्रेम पूर्वक काम लेना एक वात है और उन्हे मार पीट कर लाल आँख दिखा कर काम लेना अलग वात है। प्रेम के साथ काम लेने मे स्वामी और सेवक दोनो को संतोप मिलता है और मार-मारकर लाल-लाल आँखे दिखा कर काम लेने मे दोनो असतुष्ट रहते हैं और काम भी यथावत् नही होता।

२ हमेशा डाट-फटकार वताने वाला स्वामी अपने सेवक के शरीर पर कदाचित् अधिकार रख सके, मगर उसकी आत्मा पर अधिकार नही जमा सकता।

३ चाहे नौकर रहो या मालिक वनो, जव तक पारस्परिक विश्वास की कमी रहेगी, काम नही चलेगा और पारस्परिक विश्वास दोनो की नीतिनिष्ठा से जनमता है।

(६०) अस्पृश्यता-निवारण

१. सकीर्ण जातिवाद समाज की वुराई है और गुणवाद समाज का आदर्श है।

२. अन्त्यजो के प्रति दुर्व्यवहार करके आप धर्म का उल्लघन करते हैं, मनुष्यता का अपमान करते हैं, देश और जाति को दुर्बल बनाते हैं, अपनी शक्ति को क्षीरण करते हैं और अपनी ही आत्मा को गिराते हैं।

३. यो तो मस्तक, मस्तक ही रहता है, हाथ-हाथ ही रहता है और पैर भी पैर ही रहता है, लेकिन मस्तक पैर की उपेक्षा नही करता, वरन् उसकी रक्षा करता है। जैसे इन सभी अगो का परस्पर सम्बन्ध है, वैसे ही चारो वर्णों का भी पारस्परिक सम्बन्ध है।

४. कोई मनुष्य उच्च या नीच कुल मे जन्म लेने मात्र से उच्च-नीच नही हो जाता। उच्चता और नीचता मनुष्य की अच्छी और बुरी प्रवृत्तियो पर अवलम्बित है।

५ वर्ण व्यवस्था कर्त्तव्य की सुविधा के लिए थी—अहकार का पोषरण करने के लिए नही।

६. वर्णों के नाम पर उच्चता-नीचता की जो भावना फैली हुई है, वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप नही है—विकार है।

७. लोग मनुष्य के शरीर को अछूत मानकर

उससे परहेज करते हैं, मगर हृदय की अपवित्र वासनाओ से उतना परहेज नही करते । वास्तव मे अपावन वासनाएँ ही मनुष्य को गिराती है ।

८. जो गदगी फैलाता है वह दोषी नही और जो हरिजन गदगी साफ करता है वह दोषी कहलाये—नीच गिना जाय, यह कहाँ का अनोखा न्याय है ?

९. शूद्र समाज की नीव हैं ।

१०. महत्त्वपूर्ण सेवा-कार्य करने के उपलक्ष्य मे पुरुष को महत्तर और स्त्री को महत्तरानी जैसे अतिशय महत्त्व सूचक नाम से सबोधित किया गया है ।

११ कोई मनुष्य ऐसा हो ही नही सकता, जिससे घृणा की जाय या जिसे छूने से छूत लगती हो । सभी प्राणियो की आत्मा परमात्मा के समान है और शरीर की बनावट के लिहाज से मनुष्य-मनुष्य मे कोई अन्तर नही है ।

(६१) सुधार और सुधारक

१ जगत् को दु खी अवस्था मे से उबारने का एक ही मार्ग है और वह है समानता का आदर्श ।

२. जो युवक सुधार करना चाहते है उन्हे मैं चेतावनी देना चाहता हूँ कि धर्महीन सुधार कल्याण-कारी न होगा और वह समाज को घोर विनाश के गहरे गड्ढे मे पटक देगा।

३ ऐसे लोग दूसरो का क्या सुधार करेंगे जो अपने सुधार की बात भी नही सोच सकते। सच्चा सुधारक अपने से ही सुधार आरम्भ करता है।

४ लोग मौज-शौक त्याग दें, विलासमय जीवन का निसर्जन कर दे तो गरीबो को अपने बोझ से हल्का कर सकते हैं, साथ ही अपने जीवन को भी सुधार के पथ पर अग्रसर कर सकते हैं।

५ परिवर्तन मे ही गति है, प्रगति है, विकास है, सिद्धि है। जहा परिवर्तन नही वहा प्रगति को अवकाश भी नही है। वहा एकान्त जडता है, स्थिरता है, शून्यता है। अतएव परिवर्तन जीवन है और स्थिरता मृत्यु है। परिवर्तन के आधार पर ही विश्व का अस्तित्व है।

६. रूढि के गुलाम न रहकर उन कामो को

त्यागना ही चाहिए, जो अनुचित, हानिप्रद, अथवा निरर्थक है।

(६२) नारी

१. वह अच्छी गृहिणी है जो अपने सद्गुणों से पति को मुग्ध करले और ऐसा करे कि पति को परमात्मा का स्मरण होता रहे।

२. जैसे शरीर का आधा भाग वेकार हो जाने से सारा शरीर ही वेकार हो जाता है, वैसे ही नारी-शक्ति के अभाव मे नर की शक्ति पूरा काम नही करती।

३ स्त्रिया जग-जननी का अवतार है। इन्ही की कूख से महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण आदि उत्पन्न हुए हैं। पुरुष समाज पर स्त्री-समाज का वड़ा भारी उपकार है। उस उपकार को भूल जाना, उनके प्रति अत्याचार करने मे लज्जित न होना, घोर कृतघ्नता है।

४ स्त्रियो को हीन समझ लेने से ही आज भारत के प्राचीन गौरव से लोग हाथ धो वैठे हैं।

५. राष्ट्र मे नवीन चैतन्य आना स्त्रियो की उन्नति पर ही निर्भर है।

६. ससार मे स्त्री-पुरुष का जोड़ा माना गया है। जोडा वह है जिसमे समानता विद्यमान हो। पुरुष पढ़ा-लिखा शिक्षित हो और स्त्री मूर्खा, तो उसे जोडा नही कहा जा सकता।

७ जैसे सोने की कीमत आग मे तपाने से वढ जाती है, उसी प्रकार स्त्री की कीमत कष्ट सहन करके धर्म को दिपाने मे है, भोग-विलास मे पडी रहने मे नही।

८ गहना-कपडा नारी का सच्चा आभूषण नही है। नारी का श्रेष्ठ आभूषण शील है।

९ जव से पुरुषो ने स्त्री शिक्षा के विरुद्ध आवाज उठाई है तभी से उनका पतन प्रारम्भ हुआ है और आज भी उस विरोध के कटु फल भुगतने पड रहे हैं।

(६३) वाणिज्य-व्यापार

१ न्यायोचित व्यापार करने वाला अपने धर्म पर स्थिर रहेगा और जो अन्याय करेगा वह अधर्म की सरिता मे डूबेगा।

२. व्यापार के निमित्त जाने वाले को साधु मंगल पाठ (मागलिक) सुनाते हैं सो इसलिए कि व्यापार के लिए जाने वाला द्रव्य धन के प्रलोभन मे भाव धन (आत्मिक सम्पत्ति) को न भूल जाय ।

३. यदि पैसा नही कमाना है तो फिर व्यापार ही क्यों किया जाय, ऐसा सोचने वाले व्यक्तिगत स्वार्थ से आगे कुछ नही सोचते ।

४. चार आने के लिए झूठ बोलना, कम तौलना, कम नापना, अच्छी चीज मे बुरी मिलाकर बेचना और झूठे दस्तावेज बनाना धन की गुलामी करना नही है तो क्या है ? ऐसा धन धनी को भोगता है, धनी उसको नही भोगता ।

(६४) राष्ट्रीयता

१. जिस राष्ट्रीयता मे एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का सहायक और पूरक रहता है, जिसमे प्रतिस्पर्धा के बदले पारस्परिक सहानुभूति की प्रधानता होती है, जहा विश्व-कल्याण के प्रयोजन से राष्ट्रीय नीति का निर्धारण होता है वही शुद्ध राष्ट्रीयता है ।

२. जैसे शरीर का प्रत्येक अग दूसरे अग का पोषक है उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र विश्व शरीर का पोषक होना चाहिए।

३ अपनी मातृभूमि पर प्रेम और भक्ति भाव रखने का अर्थ यह नही है कि दूसरे देशो के प्रति द्वेष-भाव रखा जाय। हमारा राष्ट्र-प्रेम, विश्व-प्रेम की पहली सीढी होना चाहिए।

४ अगर आप इतना खयाल रखें कि आपके किसी कार्य से भारत की लाज न लुटने पावे तो भी कुछ कम नही है।

५ प्रभो! मेरे हृदय मे ऐसा भाव भर दो कि मैं किसी के प्रति अन्याय न करूँ। राजसत्ता का मद मेरे मन को मलिन न होने दे। मैं जनता की सुख-शान्ति के लिए अपने स्वार्थों को त्यागने के लिए सदैव उद्यत रहूं।

६ मातृभूमि के प्रति कर्त्तव्य निर्धारित करना गृहस्थ के लिए ही नही, साधु के लिए भी आवश्यक है। मातृभूमि गृहस्थ और साधु दोनो के लिए है।

७ जहा सुव्रतियो की सख्या जितनी अधिक

होती है वह ग्राम, नगर और वह देश उतना ही सुरक्षित रहता है। सुव्रतियो के सदाचार रूप प्रवल वल के मुकावले शत्रुओ का दल-वल, निर्वल-निस्तेज हो जाता है।

८. अगर छोटे-से-छोटा भी अत्याचार सहन कर लिया जाय तो गणतन्त्र का आसन दूसरे ही क्षण कापने लगेगा।

९ जिस भूमि से तुम्हारा अपरिमित कल्याण हो रहा है, उसे तुच्छ मानकर स्वर्ग का गुण गान करते रहना एक प्रकार का व्यामोह ही है।

१०. तुम जिस देश मे जन्मे हो, जहाँ के अन्न, जल और वायु से तुम्हारा पोषण हुआ है, उसी देश मे उत्पन्न होने वाली वस्तुओ के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओ का तुम्हे त्याग करना चाहिए।

११ जिस देश मे पैदा हुए हैं, उसकी निन्दा करके दूसरे देश की प्रशसा करने वाले गिरे हुए हैं, भोग के कीडे है। उनसे किसी प्रकार का उद्देश्य सिद्ध नही होता।

२. जैसे शरीर का प्रत्येक अंग दूसरे अग का पोषक है उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र विश्व शरीर का पोषक होना चाहिए ।

३ अपनी मातृभूमि पर प्रेम और भक्ति भाव रखने का अर्थ यह नही है कि दूसरे देशो के प्रति द्वेष-भाव रखा जाय । हमारा राष्ट्र-प्रेम, विश्व-प्रेम की पहली सीढी होना चाहिए ।

४. अगर आप इतना खयाल रखें कि आपके किसी कार्य से भारत की लाज न लुटने पावे तो भी कुछ कम नही है ।

५ प्रभो ! मेरे हृदय मे ऐसा भाव भर दो कि मैं किसी के प्रति अन्याय न करूँ । राजसत्ता का मद मेरे मन को मलिन न होने दे । मैं जनता की सुख-शान्ति के लिए अपने स्वार्थों को त्यागने के लिए सदैव उद्यत रहू ।

६ मातृभूमि के प्रति कर्त्तव्य निर्धारित करना गृहस्थ के लिए ही नही, साधु के लिए भी आवश्यक है । मातृभूमि गृहस्थ और साधु दोनो के लिए है ।

७. जहा सुव्रतियो की सख्या जितनी अधिक

होती है वह ग्राम, नगर और वह देश उतना ही सुरक्षित रहता है। सुव्रतियो के सदाचार रूप प्रवल वल के मुकावले शत्रुओ का दल-वल, निर्वल-निस्तेज हो जाता है।

८ अगर छोटे-से-छोटा भी अत्याचार सहन कर लिया जाय तो गणतन्त्र का आसन दूसरे ही क्षण कापने लगेगा।

९ जिस भूमि से तुम्हारा अपरिमित कल्याण हो रहा है, उसे तुच्छ मानकर स्वर्ग का गुण गान करते रहना एक प्रकार का व्यामोह ही है।

१० तुम जिस देश मे जन्मे हो, जहाँ के अन्न, जल और वायु से तुम्हारा पोषण हुआ है, उसी देश मे उत्पन्न होने वाली वस्तुओ के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओ का तुम्हे त्याग करना चाहिए।

११ जिस देश मे पैदा हुए हैं, उसकी निन्दा करके दूसरे देश की प्रशसा करने वाले गिरे हुए है, भोग के कीडे है। उनसे किसी प्रकार का उद्देश्य सिद्ध नही होता।

(६५) राज्य और राजा

१. राज्य-रक्षा और धर्म-रक्षा मे सर्वथा विरोध नही है। कोई यह न कहे कि हम धर्म की आराधना करने मे असमर्थ हैं, क्योकि हमारे ऊपर राज्य की रक्षा का उत्तरदायित्व है।

२. अनीति का प्रतीकार न करना, राजा के लिए कलक का टीका है। युद्ध के भय से जो राजा अन्याय, अत्याचार होने देगा, वह पृथ्वी को नरक वना डालेगा और अपने धर्म को कलकित करेगा।

३ जो राजा प्रजा की रक्षा के योग्य उत्तर-दायित्व की परवाह नही करता, वह राजा नही, लुटेरा है; वह राजभक्ति का पात्र नही हो सकता।

४ प्रजा के हित का नाश करने वाली वाते कानून के द्वारा न रोकने वाला राजा, राजा कहलाने योग्य नही है।

(६६) संघ और संघसेवा

१ क्या सजीव और क्या निर्जीव, प्रत्येक वस्तु

मे, अणु-अणु मे अनन्त सामर्थ्य भरा पडा है। वह सामर्थ्य सफल तव होता है जव उसका समन्वय किया जाय।

२. शक्तियो का सग्रह करने के लिए सघर्ष को दूर कर सघ शक्ति को केन्द्रित करने की आवश्यकता है।

३. जैसे पानी और अग्नि की परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली शक्तियो के समन्वय से अद्भुत शक्ति सम्पन्न विद्युत् उत्पन्न किया जाता है, इसी प्रकार संघ के अगो का समन्वय करके अपूर्व शक्ति उत्पन्न करने से ही सघ मे क्षमता आती है।

४ जव तक विखरी हुई अन्य शक्तियो को एकत्र न किया जाय तव तक एक व्यक्ति की शक्ति से, चाहे वह कितनी ही वलवती क्यो न हो, इष्टसिद्धि नही हो सकती।

५ काम चाहे छोटा हो, चाहे वडा हो, उसकी सिद्धि के लिए सघशक्ति की परम आवश्यकता है।

६ जव निर्जीव वस्तुओ का सगठन अद्भुत

काम कर दिखाता है तो विवेक बुद्धि धारण करने वाले मानव-समाज की सघशक्ति का पूछना ही क्या ?

७ सघधर्म का ध्येय व्यक्ति के श्रेय के साथ समष्टि के श्रेय का साधन करना है। जब समष्टि के श्रेय के लिए व्यक्ति का श्रेय खतरे मे पड जाता है तब व्यक्ति के श्रेय का साधन करना सघधर्म का ध्येय बन जाता है।

८ व्यक्तियो के बिखरे हुए बल को अगर एकत्र करके सघबल के रूप मे परिणत कर दिया जाय तो असम्भव प्रतीत होने वाला कार्य भी सरलता के साथ सम्पन्न किया जा सकता है।

९ अगर समूचे गाव की सम्पत्ति लुट जाए तो एक मनुष्य अपनी सम्पत्ति किस प्रकार सुरक्षित रख सकता है ? इसी प्रकार जो मनुष्य अपने व्यक्तिगत धर्म की सुरक्षा चाहते हैं, उन्हे सघधर्म की रक्षा की तरफ भी पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।

१० सघ के सगठन के लिए अपने प्राणो का उत्सर्ग करने मे भी पीछे पैर नही रखना चाहिए।

११ सघसेवा का वहुत वडा माहात्म्य है। यह कोई साधारण कार्य नही है।

१२. सघ की उत्कृष्ट सेवा करने से तीर्थङ्कर गोत्र का वध हो सकता है।

१३. अगर आप सघ की सेवा करेंगे तो आपका कल्याण होगा।

१४ सघ इतना महान् है कि उसके सगठन के हेतु, आवश्यकता पडने पर पद और अहंकार का मोह न रखते हुए, इन मवका त्याग कर देना श्रेयस्कर है।

१५. सघ की सेवा मे पारस्परिक अनैक्य को कदापि वाधक नही वनाना चाहिए।

१६ सघ को छिन्न-भिन्न करना घोर पाप का कारण है।

१७ जो लोग अपना वडप्पन कायम करने के लिए दुराग्रह करके सघ मे विग्रह उत्पन्न करते है, वे घोर पाप करते हैं।

१८. अगर आप संघ की शांति और एकता के

लिए सच्चे हृदय से प्रार्थना करेंगे तो आपका हृदय तो निष्पाप वनेगा ही, साथ की ही सघ मे अशाति फैलाने वालो के हृदय का पाप भी घुल जायगा ।

१६ सघ मे एकता होने पर सघ की सब बुराइया नष्ट हो जाती हैं ।

२०. सघशक्ति, लोकशक्ति है और लोकशक्ति धर्म की माता है । संघपूजा सच्ची धर्मपूजा है ।

(६७) स्वाधीनता-पराधीनता

१ सनाथ वह है जो अपने को दूसरो का नाथ नही मानता और अपने आत्मा के सिवाय दूसरो को अपना नाथ नही समझता ।

२. वह अनाथ है, जो दूसरो का नाथ होने का अभिमान करता है ।

३ जव तक तुम ससार की किसी भी वस्तु के नाथ वने रहोगे तव तक तुम्हारे सिर पर नाथ रहेगा ही । अगर तुम्हारी इच्छा है कि कोई तुम्हारा नाथ न रहे तो तुम किसी के नाथ मत रहो ।

४. तुम समझते हो—अमुक वस्तु हमारे पास है, अतएव हम उसके स्वामी हैं; पर ज्ञानीजन कहते हैं—अमुक वस्तु तुम्हारे पास है इसी कारण तुम उसके गुलाम हो, अतएव अनाथ हो।

५ किसी को भोजन देना पुण्य कार्य है, मगर वही सबसे बडा कार्य नही है। उसे बन्धनहीन बनाना सबसे बडा कार्य है।

६ स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए उत्सर्ग की आवश्यकता होती है। स्वतंत्रता का पथ फूलों से नही, काटो से आकीर्ण है।

७ किसी भी प्रकार की पराधीनता के आगे, चाहे वह सामाजिक हो या धार्मिक हो, नतमस्तक नही होना चाहिए। यही नही, साक्षात् ईश्वर को भी पराधीनता अगीकार करने योग्य नही है।

८ स्वतन्त्रता तो सभी चाहते हैं, लेकिन जो लोग आकाश मे स्वैर विहार करने की नीति के केवल लम्बे-लम्बे भाषण करना ही जानते है, वे परतन्त्रता का जाल नही काट सकते। यह जाल तो जमीन खोदने वाले किसान ही काट सकते हैं।

(६८) स्वावलम्बन

१ पराधीनता की बेडियो को काटने का उपाय है—आत्म-निर्भर बनना ।

२ पूर्ण स्वाधीनता पूर्ण स्वावलम्बन से ही आती है ।

३. स्वावलम्बन, स्वतत्रता की पहली शर्त है, और दूसरो की सहायता की तिल भर अपेक्षा न रखना स्वावलम्बन है ।

४ परावलम्बन, साहसहीनता, दीनता, असमर्थता और रुग्णता आदि अनेक दोषो का जनक है ।

५ आप भोजन करते है पर क्या भोजन बनाना भी जानते हैं ? अगर नही जानते तो क्या आप पराधीन नही हैं ? छोटी-छोटी पराधीनताएँ भी जीवन को बहुत प्रभावित करती है ।

(६९) सत्याग्रह

१ सत्याग्रह के बल की तुलना, कोई बल नही

कर सकता। इस बल के सामने, मनुष्य शक्ति तो क्या, देव शक्ति भी हार मान जाती है।

२. सत्याग्रह में दूसरे के नाश का हेतु नहीं रहता, उसे सुधारने का हेतु रहता है।

३ सत्याग्रह का प्रभाव, मन पर पडता है और मन सारे शरीर का राजा है। इसलिए सत्याग्रह द्वारा जो सफलता प्राप्त होती है, वह स्थायी और शांतिप्रद होती है।

(७०) नीति

१ धर्म की नीव नीति है।

२. सच्ची धार्मिकता लाने के लिए जीवन को नीतिमय बनाने की अनिवार्य आवश्यकता है।

३. नीति और धर्म, ये दोनों जीवन-रथ के दो चक्र हैं। दोनो में से एक के अभाव मे जीवन की प्रगति रुक जाती है।

४ नीति के बिना धर्म की प्रतिष्ठा नही हो

सकती । नीति को भग करने वाला, धर्म को नही दीपा सकता ।

(७१) कर्त्तव्य

१ जब लौकिक और लोकोत्तर धर्मों का ठीक तरह समन्वय करके पालन किया जाता है, तब मानव-जीवन का असली उद्देश्य मोक्ष सिद्ध होता है ।

२ विचार छोडो कि दूसरे क्या करते हैं या क्या नही करते ? जो कुछ कर्त्तव्य है उसे अकेले ही करना पडे तो किये चलो, दूसरे के विषय मे तनिक भी न सोचो ।

३ सौ निरर्थक बाते करने की अपेक्षा एक सार्थक कार्य करना अधिक श्रेयस्कर है ।

४ करने योग्य कार्य को छोड कर न करने योग्य कार्यों मे दिन-रात रचे-पचे रहने की स्थिति बनी रही तो बाजी हाथ से निकल जाएगी, फिर ठिकाना लगना कठिन है ।

५. जितना कर सकते हो उतना ही कहो और

जो कुछ कहते हो उसे पूर्ण करने की अपने ऊपर जिम्मेदारी समझो।

६. अपने कर्त्तव्य की भावना को व्यवहार में लाने की चेष्टा करो।

७. जव तुम किसी के सत्कार्य की प्रशंसा करते हो तो तुम्हारा कर्त्तव्य हो जाता है कि उसमे यथाशक्ति योग भी दो। सिर्फ मुँह से वाह-वाह करना और सहयोग तनिक भी न देना, यह तो उस कार्य की अवगणना करना है।

८ जिसका अधिकार हो, उसे वह सौंप कर यश के भागी वनो।

(७२) शिक्षा

१ सदाचार ही शिक्षा का प्राण है।

२ सदाचारहीन शिक्षा ससार के लिए अभिशाप वनती है।

३. कोरे अक्षर ज्ञान से कुछ नही होने का। अक्षर ज्ञान के साथ कर्त्तव्य ज्ञान की शिक्षा दी जायगी

तभी शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा।

४ शिक्षा की सफलता इस वात मे है कि वह मनुष्य को ऐसे साचे मे ढाल दे कि वह अपनी शक्तियो का दुरुपयोग न करके सदुपयोग ही करे।

५ बाहर से ज्ञान ठूसना शिक्षा नही है। सच्ची शिक्षा है—वालक की दबी हुई शक्तियों को प्रकाश मे ले आना, सोई हुई शक्तियो को जगा देना, वालक के मस्तिष्क को विकसित कर देना, जिससे वह स्वय विचार करने की क्षमता प्राप्त कर सके।

६ जिस शिक्षा की बदौलत गरीवो के प्रति स्नेह, सहानुभूति और करुणा का भाव जागृत होता है, जिससे देश का कल्याण होता है और विश्ववन्धुता की ज्योति अन्त करण मे जाग उठती है, वही सच्ची शिक्षा है।

७ परतन्त्रता के वधनो से मुक्त करने वाली विद्या ही सच्ची विद्या है।

८. प्रकृति की पाठशाला मे जो सस्कारमय वोध

प्राप्त होता है, वह हाई स्कूल या कॉलेज मे नही मिल सकता ।

९. प्रकृति की पाठशाला मे जैसी सजीव शिक्षा मिल सकती है, वैसी अन्यत्र कही नही मिल सकती ।

१० प्रकृति के रहस्य का सूक्ष्म-निरीक्षण किया जाय तो उसमे से आत्मा अपूर्व शिक्षा ग्रहण कर सकता है ।

११ अर्थ, काम, धर्म–इन तीनो को साथ लेकर शिक्षा चलनी चाहिए। दो को भुला कर एक को ही सामने रखने से जीवन सम्पन्न नही वन सकता ।

१२. जीवन की परतन्त्रता का प्रधान कारण शिल्पकला की शिक्षा का अभाव है । जीवन को स्वतन्त्र वनाने मे शिल्पकला की शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है ।

१३ समाज मे शिक्षक का स्थान वहुत ऊंचा है। शरीर मे मस्तिष्क का जो स्थान है, वही स्थान समाज मे शिक्षक का है । शिक्षक विधाता है, निर्माता है ।

१४ सच्चा शिक्षक मनुष्य-शरीर के ढाचे मे मनुष्यता उत्पन्न करता है।

१५ जो विद्यार्थी, शिक्षक की सेवा या विनय नही करता वरन् अवज्ञा करता है, वह अपने भाग्य को दुर्भाग्य बनाता है।

१६ विद्या ग्रहण करने के लिए विनय की और विद्यादान के लिए प्रेम की आवश्यकता है।

१७ गुरु तो गुरु है ही, मगर सकट भी गुरु है। सकट से उपयोगी शिक्षाएँ मिलती हैं।

१८. अपना जीवन सफल और तेजोमय बनाना चाहते हो तो गदी पुस्तको को कभी हाथ मत लगाना, अन्यथा वे तुम्हारा जीवन मिट्टी में मिला देंगी।

१९ जो लोग महापुरुषो और महासतियो के जीवन-चरित्र पढने के बदले अश्लीलता से भरी पुस्तकें पढते हैं, उन बेचारो को नही मालूम कि वे अपने भीतर विष भर रहे हैं।

२०. वास्तविक उपदेश वही है और वही

प्रभावजनक हो सकता है जिसका पालन करके दिखाया जाय। जीवन-व्यवहार द्वारा प्रदर्शित उपदेश अधिक प्रभावशाली, तेजस्वी, स्पष्ट और प्रतीतिजनक होता है।

२१ शिक्षा-व्रत स्वीकार करने का अर्थ है आत्मा को जागृत रखकर शुद्ध दशा प्रकट करने के लिए विशेष उद्यमी बनना।

२२ जो विद्या वेगार के रूप मे पढी और पढाई जाती है वह गुलामी नही तो क्या स्वाधीनता सिखलाएगी ?

(७३) वीरता

१. सत्पुरुषो की वीरता रक्षा करने मे है, प्राणियो के सहार मे नही।

२. जो धर्म की रक्षा करना चाहता है, उसे वीर बनना पड़ेगा। वीरता के विना धर्म की रक्षा नही हो सकती।

३ अहिंसा और क्षमा के शस्त्र कायर के हाथ मे पहुँचकर निष्फल हो जाते हैं।

४ कैसी ही आपत्ति क्यों न आ पड़े, धैर्य-पूर्वक उसे सहन करने और उस समय भी धर्म की रक्षा करने मे ही सच्ची वीरता है।

५. जिस विजय का मूल्य अन्य का पराजय है, वह विजय विशुद्ध विजय नही कहला सकती।

६ सच्ची विजय मे किसी के पराजय की कामना नही हो सकती। वहाँ तो समष्टिगत कल्याण की चिन्ता की जाती है।

७ लाख सुभटो को दुर्जय सग्राम मे जीतने की अपेक्षा अकेले अपने आप को जीत लेना कही अधिक महत्त्वपूर्ण है। आत्म-विजय करने वाले की विजय श्रेष्ठ है।

८ हिसा के प्रयोग से या हिसाजनक अस्त्र-शस्त्र से प्राप्त की हुई विजय स्थायी नही रहती। इसके विपरीत प्रेम और अहिसा द्वारा जन-समाज के हृदय पर जो प्रभुता स्थापित की जाती है, वह सच्ची और स्थायी विजय है।

९ वस्तुत मारने की अपेक्षा मरने के लिए

अधिक वीरता की आवश्यकता होती है, लेकिन कुत्ता-विल्ली की मौत मरना वीरता नही, शेर की मौत मरने मे अधिक वीरता है।

१०. अपनी सवेदना शक्ति के ढाचे मे ढालकर, दु ख को सुख रूप मे पलट लेना ही वीरता का आदर्श है।

११. सच्चे वीर पुरुष किसी भी दूसरी चीज पर निर्भर नही रहते और न किसी की देखादेखी करते हैं।

१२. सच्चा वीर वह है, जो अपना सर्वस्व निछावर करके भी शरणागत की रक्षा और सेवा करता है।

१३ शुद्ध आत्मा के द्वारा अशुद्ध आत्मा पर विजय प्राप्त करने से ही सुख प्राप्त किया जा सकता है।

१४ जो कपट नीति से काम लेता है, उसकी विजय कभी-न-कभी पराजय के रूप में परिणत हुए बिना नही रह सकती। वह अपने कपट का आप ही शिकार वन जाता है।

(७४) उपवास

१ उपवास वह है जिसमे कषायो का, विषयो का और आहार का त्याग किया जाता है। जहाँ इन सबका त्याग न हो—सिर्फ आहार त्यागा जाय और विषय-कषाय का त्याग न किया जाय, वह लघन है—उपवास नही।

२. उपवास परमात्मा के निकट पहुँचने का एक मार्ग है।

३. उपवास मे शारीरिक और आत्मिक विकास का समावेश हो जाता है।

४. अनशन तप की उपयोगिता सशय का विषय नही है, तथापि बलात् अनशन कराया जावे तो हिसा का पाप लगेगा। भक्त-पान का विच्छेद करना अतिचार है।

५. उपवास इद्रियो की रक्षा करने वाला है, धर्म साधना का सबल साधन है। इद्रियो के चाचल्य का निग्रह उपवास से ही होता है।

६ महा शत्रु पर अधिकार करना सरल है, पर इन्द्रियो पर अधिकार करना कठिन है। उपवास ही इन्द्रियो पर अधिकार करने का सरल उपाय है।

७ आप हमेशा भोजन करते हैं। आतें उस भोजन को पचाती हैं। आतें अविश्रान्त रूप से काम करते-करते थक जाती है। अगर बीच मे कभी-कभी उन्हे विश्राम मिल जाया करे तो उनमे नवीन शक्ति आ जायेगी।

८. उपवास भूखो की भूख मिटाने वाला, रोगियो के रोग दूर करने वाला और ईश्वर से मिलाने वाला है।

९ उपवास शरीर को स्वस्थ रखने की एक प्राकृतिक अमोल औषध है।

१० एक मास मे छह दिन ही अगर उपवास चिकित्सा का प्रयोग किया जाय तो शरीर मे किसी प्रकार का रोग नही रह पाएगा और डॉक्टर का द्वार भी न खटखटाना पडेगा।

(७५) प्रायश्चित

१. छिपाने की चेष्टा करने से पाप घटता नही वरन् बढता जाता है ।

२ पाप के लिए प्रकट रूप से प्रायश्चित करने वाला परमात्मा के सन्निकट पहुचता है ।

३ मनुष्य के साथ प्रेम करना, मैत्री स्थापित करना, यही ईश्वर के पथ के कंटको को बीनना है। ऐसा करके ही मनुष्य अपने पुराने पापो का प्रायश्चित कर सकता है। परमात्मा के साथ मिलाप होने का भी यही मार्ग है।

४ स्वच्छ हृदय से पश्चाताप करने से आत्मा मे अपने दोषो को प्रकट करने का सामर्थ्य आता है और दुर्बलता दूर होती है।

(७६) विनय

१ मृदुता एक महान् गुण है और वह मान पर विजय प्राप्त करने से आता है। जिसमें नम्रता होती है वही महान् समझा जाता है।

२. जैसे पृथ्वी के सहारे के विना वृक्ष आदि स्थिर नही रह सकते उसी प्रकार समस्त गुणो की आधार-भूमिका विनयशीलता है। विनयशीलता के अभाव मे कोई भी गुण स्थिर नही रह सकता।

३. अहकार का त्याग करके नम्रता धारण करने वाले, मनुष्य रूप मे देव हैं; चाहे वे कितने ही गरीब हो। जिसके सिर पर अहकार का भूत सवार रहता है, वह धनवान् होकर भी तुच्छ है, नगण्य है।

४ क्रोध और अहकार को जीतने वाला पुरुष महान् है।

५ सम्पत्ति पाकर सज्जन पुरुष अधिक नम्र हो जाता है।

६ मनुष्य मे जितनी ज्यादा विनयशीलता होगी, उसकी पुण्याई उतनी ही ज्यादा बढेगी।

७ अहंकार के द्वारा वडे होने से कोई वडा नही होता। सच्चा वडप्पन दूसरो को वडा बनाकर आप छोटे बनने से आता है।

८. जो मनुष्य वचन से लघुता दिखलाता है

मगर पाप का त्याग नही करता, वह वास्तव मे लघुता का प्रदर्शन नही करता, ढोग का प्रदर्शन करता है।

(७७) आत्मालोचन

१. पाप के प्रकाशन से मलीन आत्मा भी निर्मल बन जाती है।

२. बडे से बडा पापी भी परमात्मा के समक्ष अपने पापो को निवेदन करके निष्पाप बन जाता है।

३. खुली गटर की अपेक्षा ढकी गटर अधिक बदबूदार होती है। इसी प्रकार प्रकट किये हुए पापो की अपेक्षा छिपाये हुए पाप अधिक हानिकारक होते हैं। अतएव पापो को दबाने की चेष्टा न करो। उन्हे खोल कर प्रकट कर दो और हार्दिक पश्चाताप करो। यही कल्याण का मार्ग है।

४ पाप छिपाने से घटता नही, बढता है।

५ भूल हो जाना अच्छी बात नही है, पर उस भूल को छिपा कर अपने आपको भूल रहित प्रकट करने की भूल करना बहुत ही जघन्य कृत्य है।

६ सबसे पहली भूल तब होती है जब कोई मनुष्य बुरा काम करता है लेकिन उसे बुरा न समझ कर अच्छा समझता है।

७ भूल को भूल समझ लेने से वह इतनी भयंकर नही रहती। मगर जब भूल-भूल ही नही मालूम होती तब भूलों की परम्परा चल पडती है और भूल करने वाला उसका परिमार्जन करने की ओर भी ध्यान नही देता।

८ जो मनुष्य अपना दोष स्वीकार कर लेता है, उसकी आत्मा बहुत ऊची चढ जाती है।

९ जो शक्ति पराई निन्दा मे खर्च करते हो उसे आत्म-निन्दा मे क्यो नही लगाते ?

१०. दूसरे के दोष न देखकर, अपने ही दोषो को दूर करने मे भलाई है।

(७८) अन्तरावलोकन

१ तुम बाहर के शत्रुओ को देखते हो, पर

भीतर जो शत्रु छिपे बैठे है, उन्हे क्यो नही देखते ? वे ही तो असली शत्रु हैं ।

२. हृदय के पट खोलो और जरा सावधानी से देखो तो तुम्हे अपना हृदय ही दयादेवी का मन्दिर दिखाई देगा ।

३. अगर मनुष्य अपने अन्तर्नाद की ओर ध्यान दे तो उसे प्राय. कर्त्तव्य के विषय मे विमूढ न होना पड़े ।

४. जब कोई तुम्हारी निन्दा करने लगे तो आत्म-निरीक्षण करने लगो । इससे बडे लाभ होंगे ।

५ तू भ्रम मे क्यो पडा है ? अपने अन्त करण की ओर देख, वही तो वह बडा कारखाना चल रहा है जहाँ सुख और दु ख, तेरी भावनाओ के साचे मे ढल रहे हैं ।

६. वस्तुत हमारा अहित करने वाला हमारे अन्त करण मे ही विद्यमान है। अगर अहितकर्त्ता अन्त करण मे न होता तो अन्तःकरण मे ही क्लेश का

प्रादुर्भाव क्यो होता ? जहा बीज बोया जाता है वही अकुर फूटता है।

७. बाहर के पापो को समझना सरल है किन्तु पाप के सूक्ष्म मार्ग को खोज निकालना बडा ही कठिन है। बाहर से हिंसा आदि न करके ही अपने को निष्पाप मान बैठना भूल है।

(७६) आत्म-विजय

१. आत्म-विजयी जितात्मा लाखो योद्धाओ को जीतने वाले योद्धा की अपेक्षा भी बडा विजयशाली गिना जाता है। जितात्मा की सर्वत्र पूजा होती है। इसी कारण सम्राट् की अपेक्षा परिव्राट की पदवी ऊची मानी गई है।

२ सुभट की अपेक्षा साधु और सम्राट् की अपेक्षा परिव्राट इसीलिए वन्दनीय और पूजनीय है कि सुभट और सम्राट् क्षेत्र पर विजय प्राप्त करता है जब कि साधु या परिव्राट क्षैत्री अर्थात् आत्मा पर। क्षेत्र या शरीर पर विजय पा लेना कोई बडी बात नही है परन्तु

क्षेत्री अर्थात् आत्मा पर विजय पा लेना अत्यन्त ही कठिन है।

३. जो महापुरुष अपनी आत्मा को जीतकर जितात्मा अथवा जितेन्द्रिय बन जाता है, वह जगद्-वन्दनीय हो जाता है।

४. आत्मा और शरीर को तलवार और म्यान की तरह समझ लो—तो फिर क्या चाहिए, समझ लो कि आत्म-विजय की चावी तुम्हारे हाथ मे आ गई है।

(८०) ज्ञान-दर्शन

१. शरीर जड और आत्मा चेतन है, इस प्रकार का विवेक उत्पन्न होते ही अज्ञान विलोन हो जाता है।

२. प्रकृति के निगूढतर रहस्य और सूक्ष्मतम अध्यात्म तत्त्व बुद्धि या तर्क के विषय नही हैं। तर्क उनके निकट भी नही पहुँच पाता। ऐसी स्थिति मे बुद्धि या तर्क के भरोसे बैठा रहने वाला सम्यग्ज्ञान से वचित रहता है।

३ मतान्ध होना मूर्खता का लक्षण है।

४ प्रत्येक बात पर बुद्धिपूर्वक विचार करो। केवल अन्धविश्वास से प्रेरित होकर या सकुचित मनोवृत्ति से अपनी मन कल्पित बात को मत पकड रखो। दुराग्रह या स्वमताग्रह के फेर मे मत पडो।

५. सदैव विवेक बुद्धि से काम लेने वाले के लिए उपदेश की आवश्यकता ही नही रहती। उसका, विवेक ही उसके लिए वडा उपदेशक है।

६ सम्यग्ज्ञान शाश्वत सूर्य है, कभी न बुझने वाला दीपक है। उसके चमकते हुए प्रकाश से मात्सर्य, ईर्ष्या, क्रूरता, लुब्धता आदि अनेक रूपो मे फैला हुआ अज्ञान-अन्धकार एक क्षरण भी नही टिक सकता है।

७ क्रियाकाड–अनुष्ठान औषध है और सम्यग्ज्ञान पथ्य है। सम्यग्ज्ञान के प्रभाव से अनुष्ठान अमृत रूप वनकर आत्मा का उन्माद दूर करता है और आत्मा को जागृत करता है।

८ जैसे गाय घास को भी दूध के रूप मे परिणत कर लेती है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानी पुरुष अन्य धर्मशास्त्रो को भी हितकर रूप मे परिणत कर सकता

है और ऐसा करके वह धार्मिक कलह को भी शान्त कर सकता है।

९. एकान्तवास के साथ अगर ज्ञान-भाव हो तो वह अत्यन्त लाभप्रद भी सिद्ध होता है।

१० वही दया श्रेष्ठ है जो ज्ञानपूर्वक की जाती है।

११. ज्ञान भी वही श्रेष्ठ है जिससे दया का आविर्भाव होता हो।

१२ ज्ञान और दया का सम्बन्ध वृक्ष और उसके फल के सम्बन्ध के समान है। ज्ञान वृक्ष है तो दया उसका फल है, ज्ञानरहित दया और दयारहित ज्ञान सार्थक नही है।

१३. इन्द्रिय दमन करना ही सच्चा ज्ञान है।

१४. अपने बालको को शान्ति पहुंचाना चाहते हो तो उन्हे आध्यात्मिक ज्ञान देना उचित है।

१५ ज्ञान के संयोग के बिना की जाने वाली क्रिया से फल की प्राप्ति नही होती।

१६ पदार्थों के असली स्वरूप का विचार करके उन्हे निस्सार समझना और उनकी ओर इन्द्रियो को नही जाने देना ज्ञानी का लक्षरण है ।

१७ ज्ञान, ससार-वन्धन से मुक्त करने वाला है, लेकिन जव उसके कारण किंचित् भी अभिमान हो उठता है तो वह भी परिग्रह बन जाता है और अधोगति का कारण होता है ।

१८ ज्ञानी पुरुष मन से, वचन से और तन से क्षण-क्षण मे पुण्य कार्य करके पुण्य प्रकृति का बन्ध करते हैं और अज्ञानी पापाचरण करके पल-पल मे पाप की पोटली वाधते हैं ।

१९ ज्ञानी का प्रत्येक कार्य विश्व-कल्याण की कामना से होता है और अज्ञानी का स्वार्थ-लिप्सा से । अतएव ज्ञानी के कार्य उसे स्वर्ग का स्वामी बनाते हैं और अज्ञानी के कार्य अज्ञानी को नरक का अतिथि बनाते हैं ।

२०. ज्ञानीजन बालक के समान निर्विकार बनना चाहते हैं अथवा होते हैं ।

२१. सम्यग्दर्शन वह ज्योति है, जिसे उपलब्ध कर मनुष्य विवेकमयी दृष्टि से सम्पन्न बन जाता है। जहा सम्यग्दर्शन होगा वहा मूढ दृष्टि को अवकाश नही रहता।

(८१) चारित्र

१. खराब कामो से बचना और सदाचार के साथ सम्बन्ध जोडना ही धर्म है।

२ कोई भी बल चारित्र बल की तुलना नही कर सकता। जिसमे चारित्र का बल है उसे दूसरे बल अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।

३. आप अपने को बडा दिखाने के लिए जितनी चेष्टा करते हैं, उतनी ही चेष्टा अगर बडा बनने के लिए करे तो आप में दिखावटी बडप्पन के बदले वास्तविक बड़प्पन प्रकट होगा।

४. नैसर्गिक गुण के सामने उपदेश की कोई बिसात नही। नैसर्गिक गुण के होने पर मनुष्य की भावना जितनी ऊंची होती है, उपदेश से उतनी ऊची नही हो सकती।

५. अगर तुम परमात्मा को और अपनी आत्मा को सन्तुष्ट करना चाहते हो तो जैसा कहते हो वैसा ही आचरण करके दिखलाना चाहिए।

६ परमात्मा का मौखिक नामस्मरण करने से सच्चा शरण नही मिलता। परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट धर्म मार्ग पर चलने मे ही सच्चा शरण है।

७. तुम जो धर्म क्रिया करते हो वह लोक को दिखाने के लिए मत करो। अपनी आत्मा को साक्षी बनाकर करो, निष्काम कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित होकर करो।

८ अपनी अमूल्य धर्मक्रिया को लौकिक लाभ के लघुतर मूल्य पर न बेच दो। चिन्तामणि रत्न को लोहे के वदले मत दे डालो।

९ रात-दिन की शुभ-अशुभ प्रवृत्तियो से ही पुण्य-पाप का हिसाव होता है।

१०. चिउंटी, हाथी के वरावर नही वन सकती तो क्या चलना छोड बैठती है ? अगर तुम दूसरे के वरावर प्रगति नही कर सकते हो तो कोई हर्ज नही।

अपनी शक्ति के अनुसार ही चलो, पर चलते चलो । एक दिन मंजिल तय हो ही जाएगी ।

११ ठोकरे खाने के बाद भी जो सावधान नही होता, वह बडा मूर्ख है ।

१२ जो पुरुष परधन और परस्त्री से सदैव यत्नपूर्वक बचता रहता है, उसका कोई कुछ भी नही बिगाड सकता ।

१३. परधन को धूल के समान और परस्त्री को माता के समान मानने की नीति अगर अपने जीवन मे अमल मे लाओगे तो जन-समाज की और अपनी खुद की भी सेवा कर सकोगे ।

१४. साप ऊपर की केंचुली त्याग दे मगर विष का त्याग न करे तो उसकी भयकरता कम नही होती । इसी प्रकार जो ऊपर से त्यागी होने का ढोग करते हैं, परन्तु अन्दर के रागद्वेष आदि विकारो से ग्रस्त हैं, वे महा-पुरुषो की गणना मे नही आ सकते ।

१५. जिन कामो से आत्मा का कल्याण होता

हो उन्ही कामो मे आत्मा को प्रवृत्त करना चाहिए। इन्द्रियो को वश मे करने का यही उपाय है।

१६ जीवन के वास्तविक उत्कर्ष के लिए उच्च और उज्ज्वल चारित्र की आवश्यकता है। चारित्र के अभाव मे जीवन की सस्कृति अधूरी ही नही, शून्य रूप है।

१७ जैसे अनुष्ठान-हीन कोरे ज्ञान से आत्म-शुद्धि नही हो सकती, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानहीन चारित्र भी मोक्ष साधक नही हो सकता।

(८२) ज्ञान-क्रिया

१ ज्ञान और क्रिया दोनो का समन्वय ही दोनो पैरो के समान लक्ष्य तक पहुँचाने मे सहायक होता है।

२ ज्ञानहीन क्रिया अन्धी है और क्रियाहीन ज्ञान पगु है।

३ जैसे एक चक्र से रथ नही चल सकता, इसी प्रकार अकेले ज्ञान और अकेली क्रिया से कोई सिद्धि प्राप्त नही हो सकती।

४. क्रियाविहीन ज्ञान निरर्थक होता है।

५ अगर जीवन मे किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त करनी है तो पहले उसका स्वरूप, उसके साधन और उसके मार्ग को समीचीन रूप से समझो और फिर तदनुकूल क्रिया करो।

६ उत्कृष्ट सयम का सद्भाव होने पर ही उत्कृष्ट ज्ञान आता है।

७ चरित्रहीन ज्ञान जीवन का बोझ है।

८ जिस दीपक मे केवल बत्ती होगी या केवल तेल ही होगा तो वह प्रकाश नही दे सकेगा। इसी प्रकार ज्ञान के अभाव मे अकेली क्रिया से या क्रिया के अभाव मे अकेले ज्ञान से कल्याण नही हो सकता।

९ अपने सद्विचार को आचार मे लाना ही कल्याण मार्ग पर प्रयाण करना है।

१० ज्ञान और क्रिया का साहचर्य श्रेय सिद्धि का मुख्य कारण है। जैसा समझा वैसा ही करो, तभी ध्येय सिद्ध होता है। जानना जुदा और करना जुदा, इस

प्रकार जहा विसवाद होता है वहा बडे से बड़ा प्रयास करने पर भी विफलता ही मिलती है।

(८३) त्याग

१. सच्ची शान्ति भोग मे नही, त्याग मे है और मनुष्य सच्चे हृदय से ज्यो-ज्यो त्याग की ओर बढता जायगा त्यो-त्यो शान्ति उसके समीप आती जायेगी।

२ त्याग के बदले मे किसी वस्तु की कामना करना निरा वनियापन है। फिर ऐसे त्यागी और सट्टे-वाज मे क्या अन्तर है? सच्चा त्यागी वही है जो निष्काम भावना से त्याग करता है।

३ भोगो मे अतृप्ति है, त्याग मे तृप्ति है। भोगो मे असन्तोष, ईर्ष्या और कलह के कीटाणु छिपे हुए हैं, त्याग मे सन्तोष की शाति है, निराकुलता का अद्भुत आनन्द है, और है आत्मरमण की स्पृहणीयता।

४ जो जितना महान् त्यागी है वह उतना ही महान् पुरुष है।

५. दूसरो से त्याग कराने से पहले अपने को त्याग करना चाहिए।

६. वीर पुरुष अपनी रक्षा के लिए लालायित नही रहते, वरन् अपने जीवन का उत्सर्ग करके भी दूसरे की रक्षा के लिए सदा उद्यत रहते हैं।

७. राज्य करना और राज्य सत्ता के वल पर सुधार करना साधारण मनुष्य का कार्य है। ससार के उत्थान का महान् कार्य करने वाले महापुरुपो ने पहले प्राप्त राज्य को ठुकरा दिया, तभी उन्हे अपने महान् उद्देश्य मे सफलता मिली।

८. जीवन मे धर्म तभी मूर्त्त रूप धारण करता है जव अपने सुख का वलिदान करके दूसरो को सुख दिया जाता है।

९ जहां ससार के समस्त वल वेकार वन जाते हैं, अस्त्र-शस्त्र निकम्मे हो जाते हैं, वहां भी त्याग का वल अपनी अद्भुत और अमोघ शक्ति से कारगर होता है।

(८४) संवर

१ आत्मा की स्थिरता के लिए कर्म रहित-अक्रिय होना आवश्यक है।

२. आत्मा की वास्तविक शाति स्थिर होने मे ही है। जहा तक आत्मा स्थिर न होगा वहा तक आत्मा को शाति-लाभ सभव नही है।

३. जब तक आत्मा चचलता मे है, स्थिरता नही आई है, तब तक आत्म-शान्ति नही मिल सकती।

(८५) संयम

१. अनेकानेक प्रयत्न करने पर भी जिस वस्तु का प्राप्त होना कठिन है, आत्म-सयम से वह सहज ही प्राप्त हो जाती है।

२. भोगों को भोगना तो पाशविक जीवन व्यतीत करना है।

३ भोगो की इच्छा पर विजय पाना ही मानव शक्ति की सार्थकता है।

४ एक ओर से मन को अप्रशस्त में जाने से रोको और दूसरी ओर उसे परमात्मा के ध्यान मे पिरोते जाओ। ऐसा करने पर मन वश मे किया जा सकेगा।

५. इन्द्रियो के दमन करने का अर्थ इन्द्रियो का नाश करना नही। जैसे घोड़े को मनचाहा न दौडने देकर लगाम द्वारा काबू मे रखा जाता है, उसी प्रकार इन्द्रियो को विषयों की ओर न जाने देना इन्द्रिय-दमन कहलाता है।

६ गहनो मे सुन्दरता देखने वाला आत्मा के सद्गुणो के सौन्दर्य को देखने मे अन्धा हो जाता है। त्याग, सयम और सादगी मे जो सुन्दरता है, पवित्रता है, सात्विकता है, वह भोगो मे कहां ?

(८६) भाषा-विवेक

१. मनुष्य की महत्ता और हीनता, शिष्टता और अशिष्टता वाणी मे तत्काल झलक जाती है। अतएव सस्कारी पुरुषो को बोलते समय बहुत विवेक रखना चाहिए।

२. वचन-बाण तलवार से भी ज्यादा तीखे होते है। वे तलवार की अपेक्षा अधिक गहरा घाव करते हैं।

३. मीठे वचन की कोई कमी तो है नही। फिर कठोर और कष्टकर वचन कहने से क्या लाभ ?

४. जीभ का उपयोग अगर परमात्मा का भजन करने मे किया जा सकता है तो फिर दूसरे सासारिक कार्यों मे उसका दुरुपयोग करने की क्या आवश्यकता है ?

५. जो घर मे जीभ सभाल कर बोलता है, वह बाहर भी जीभ सभाल कर बोलेगा। जो घर मे जीभ पर काबू नही रख सकता, वह बाहर भी काबू नही रख सकेगा।

६. कायर लोग जीभ का दुरुपयोग करते हैं, वीर पुरुष नही। कुत्ते भौंकते हैं, वीर सिंह नही भौंकता।

७ वाणी द्वारा शक्ति का निरर्थक व्यय करना अनुचित है। बोलने मे विवेक की बडी आवश्यकता है।

(८७) कटु वचन

१ मुँह से जैसी ध्वनि निकलेगी वैसी ही प्रति-

ध्वनि सुनने को मिलेगी। अगर कटु शब्द नही सुनना चाहते हो तो अपने मुँह से कटु शब्द मत निकालो।

२. दूसरे के मुँह से गाली सुनकर अपना हृदय कलुषित मत होने दो। वह भीतर भरी हुई अपनी गन्दगी बाहर निकालता है तो क्या इसलिए कि उसे तुम अपने भीतर डाल लो ?

३. किसान खाद के रूप मे गदगी का सदुपयोग कर लेता है और उससे उत्तम उपज होती है। इसी प्रकार तुम भी आत्म-कल्याण के रूप मे गालियो का सदुपयोग कर सकते हो।

४. गाली देने वाला अपनी जिह्वा का दुरुपयोग करता है, पाप का उपार्जन करता है। वह मानसिक दुर्बलता का शिकार है, अतएव करुणा का पात्र है। जो करुणा का पात्र है उस पर क्रोध करना विवेकशीलता नही है।

५. गाली देने वाला अगर पाप करता है तो उसका मुकाबला करने के लिए मुझे पाप क्यो करना चाहिए ? ऐसा करने से हम दोनो मे क्या अन्तर रह जायेगा ?

(८८) निन्दा

१. दोष की सत्यता पर विचार किये विना ही किसी को दोषी प्रकट करना अन्याय है।

२ तलवार का घाव ठीक हो सकता है लेकिन झूठे कलंक का घाव उपाय करने पर भी कठिनाई से ही ठीक हो पाता है।

३ जैसे पौष्टिक पदार्थ शक्ति देते हैं उसी प्रकार निन्दा भी, अगर उससे मनुष्य घवरा न जाय तो, शक्ति प्रदान करती है। मनुष्य के विकास मे निन्दा भी एक साधन हो सकती है।

४ दूसरो के अवगुण देखना स्वय एक अवगुण है। दुनिया के अवगुणो को चित्त मे धारण करोगे तो चित्त अवगुणो का खजाना वन जायेगा।

५. अवगुण देखने हैं तो अपने ही अवगुण देखो।

६ दूसरे के दोष न देखकर अपने ही दोषो को दूर करने मे भलाई है।

७. जो लोग अपने अवगुणों को बड़े यत्न से छिपाकर अन्त:करण मे सुरक्षित रख छोडते हैं, उनका हृदय उन अवगुणो का स्थायी निवास-स्थान बन जाता है ।

(८६) विषय-भोग

१ इन्द्रियो का निग्रह करने से आत्मा का उद्धार होता है और निग्रह न करने से पतन अवश्य-भावी है ।

२. ससार के भोगोपभोग और सुख के साधन असलियत को भुलाने वाले हैं ।

३ भोग मे डूबा रहने वाला वर्तमान जीवन मे ही नरक का निर्माण कर लेता है ।

४ विलासमय जीवन व्यतीत करके विलास की ही गोद मे मरने वाला, उस कीट के समान है जो अशुचि मे ही उत्पन्न होकर अन्त मे अशुचि मे ही मरता है ।

५. विषयो का जाल बहुत भयकर है । उसमे

फसने वाला अपनी सम्पूर्ण शक्तियो से वंचित हो जाता है।

६. तत्त्वज्ञानी पुरुष विषयभोग से इसी प्रकार दूर भागते हैं, जैसे साधारण मनुष्य काले नाग को देखकर।

७ पर्वत से यदि एक पैर भी फिसल जाय तो कौन कह सकता है कि कितना पतन होगा ? इसी प्रकार एक भी इन्द्रिय अगर काबू से बाहर हो गई तो कौन कह सकता है कि आत्मा का कितना पतन होगा ?

८. सब अनर्थों का मूल विलासिता है।

९. जैसे सोना पाने के लिए धूल त्याग देना कठिन नही है, उसी प्रकार परमात्मा का वरण करने और सत्य-शील को स्वीकार करने के लिए तुच्छ विषय-भोगो का त्याग करना क्या बडी बात है ?

१०. यदि अपनी आँखें सार्थक करनी हो तो आँखो द्वारा प्राणिमात्र को प्रभुमय देखो।

११ जिसमे जिस वृत्ति का उदय ही नही है,

वह उस वृत्ति का विजेता नही कहा जा सकता, अन्यथा समस्त बालक काम-विजेता कहलायेंगे ।

१२. जीवन के गुलाम ही जीवन-रक्षा के लिए अपने आपको अत्याचारी की इच्छा पर छोड देते हैं ।

१३ अगर तुम्हारा आत्मा इन्द्रियो का दास न होगा तो वह स्वय ही बुरे-भले काम की परीक्षा कर लेगा ।

१४. इन्द्रियो पर कावू न रखने का परिणाम है आत्मा का पतन ।

(९०) पाप

१ निरपराध बनने के लिए मानसिक पापो को हटाना और आत्मा को सतत जागृत रखना आवश्यक है ।

२. लोग पापी नाम भी नही धराना चाहते, फिर भी पाप करते चले जाते है । यह तो ऐसी ही बात है कि कोई कलमुंहा कह दे तब तो बुरा लगे और अपने आप अपने मु ह पर कोयला पोतने मे बुरा न लगे ।

३. जो व्यक्ति पाप-कार्य का तो त्याग करता नही, उल्टा पुण्य कार्य का त्याग कर वैठता है, वह कैसा सम्यग्दृष्टि है ?

४ काले कपडे पर लगा हुआ दाग जल्दी दिखाई नही देता। इसी प्रकार जिनका हृदय पापो से खूब भरा है उन्हे अपने पाप दिखाई नही देते।

५ पापी के वाणी भले ही हो, कलेजा नही होता।

(६१) पुण्य

१ पुण्य करुणा मे है। जो पुण्यवान् होगा वही करुणावान् होगा।

२ वह पुण्यवान् है जिसका दिल दीन दुःखी जीवो को देखते ही पिघल कर पानी-पानी हो जाता है, जिसके दिल मे दया की विद्युत् दौडने लगती है।

३ जिसके दिल मे दया का वास है, वही पुण्यवान् है। जो आपापोषी है, आप वढिया खाते-पीते, पहिनते-ओढते हैं, लेकिन पास-पडौस के दुखियो की ओर

दृष्टि भी नही करते, उन्हे पुण्यवान् कैसे कहा जा सकता है ?

४. वाह्य सम्पत्ति के नष्ट हो जाने पर भी जिसके पास सद्विचार और धर्मभावना की आन्तरिक समृद्धि वची हुई है, वह सौभाग्यशाली है। इसके विपरीत आन्तरिक समृद्धि के न होने पर बाह्य सम्पत्ति का होना दुर्भाग्य का लक्षण है।

५. ऋद्धि वास्तव मे पुण्य से मिलती है, अतएव धन के लोभ मे पडकर पाप मत करो। पाप से धन का विनाश होगा, धन का लाभ नही हो सकता।

६ असल पूंजी पुण्य है। जहा पुण्य है वहा दूसरे सहायको की आवश्यकता नही रहती। पुण्य अकेला ही करोडो सहायको से भी प्रवलतर सहायक है।

७ पुण्य, त्याग और सद्भाव मे ही रहता है।

८. पुण्यवान् होने का अर्थ आलसी होना नही है। आलस्य मे डूवे रहना तो पुण्य का नाश करना है।

९. मनोरम महल और दिव्य वैभव पुण्य की

भौतिक प्रतिमा है। पुण्य, दान मे रहता है, आदान मे नही।

१०. जो दूसरो का सत्व चूस-चूसकर मोटा होना चाहता है, वह मोटा भले ही बन जाय पर पुण्य के लिहाज से वह क्षीण होता जाता है।

११ जो आधी मे से भी आधी देता है, वह ऊपर से भले ही दरिद्र दिखाई देता हो पर भीतर-ही-भीतर उसका पुण्य का भडार बढता जाता है।

१२. बढिया खाना और पहिनना एव जीभ का गुलाम बन जाना पुण्यशाली का लक्षण नही है। पुण्यवान् बनने के लिए जीभ पर अकुश रखना पडता है।

(६२) मनोविजय

१. मन ही मनुष्य के बन्ध और मोक्ष का प्रधान कारण है।

२. कार्य की सिद्धि प्रधानत सकल्प शक्ति पर निर्भर है।

३. संकल्प करने का अभिप्राय है आत्मा को जागृत करना।

४. अपनी सकल्प शक्ति का विकास करना ही आध्यात्मिक विकास है।

५. तुम्हारे मन के कुसकल्प ही तुम्हारे दु खो के बीज हैं। कुसकल्पो को हटाकर मन को परमात्मा के ध्यान मे लगाने से दु:ख के सस्कार समूल नष्ट हो जायेंगे।

६. मन के सकल्प-विकल्प से ही अच्छे-बुरे काम होते है। विल्ली जिन दाँतों से अपने बच्चे को दवाती है, उन्ही दाँतो से चूहे को दवाती है। दाँत उसके वही हैं, मगर मानसिक क्रिया की भिन्नता के कारण दोनो के दवाने मे कितना अन्तर पड जाता है ?

७. मन को वश करने के दो ही उपाय हैं— अभ्यास और वैराग्य।

८. एक ओर से मन को अप्रशस्त मे जाने से रोका जाय और दूसरी ओर से उसे परमात्मा के ध्यान

मे पिरोते रहा जाय। इससे शनै.शनै मन वश में हो जायेगा।

९ मन की समाधि से एकाग्रता उत्पन्न होती है, एकाग्रता से ज्ञान-शक्ति उत्पन्न होती है और ज्ञान-शक्ति से मिथ्यात्व का नाश तथा सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

१०. मन की एकाग्रता का तात्कालिक फल है आत्मा मे अनिर्वचनीय, अपूर्व और अनुपम निराकुलता का उदय होना।

११ जैसे विखरी हुई सूर्य की किरणों से अग्नि उत्पन्न नही होती, परन्तु काच को बीच मे रखने से किरणें एकत्र हो जाती हैं और उस काच के नीचे रुई रखने से आग उत्पन्न हो जाती है, इसी प्रकार मन और इन्द्रियो को एकत्र करने से आत्म-ज्योति प्रकट होती है।

१२. मन जव खराव कामो में प्रवृत्त होने लगे तव उसे वहाँ से हटाकर सत्कर्मों मे प्रवृत्त करना ही मन के निरोध का प्रारम्भ है।

(९३) राग-द्वेष

१ जब तक राग और द्वेष के बीज मौजूद हैं तब तक कर्म के अंकुर फूटते ही रहते हैं और जब तक कर्म के अकुर फूटते रहते हैं, तब तक जन्म-मरण का वृक्ष फलता-फूलता रहता है।

२. ससार के वन्धनो से मुक्त होने के लिए सर्व-प्रथम राग-द्वेष के वन्धनो से मुक्त होना चाहिए।

३ वस्तु स्वरूप का यथावत् और गहरा चिन्तन न करने से ही वस्तुओ के प्रति राग-द्वेष उत्पन्न होता है। वस्तुओ का स्वरूप वास्तव मे इतना उद्वेगजनक है कि उनके स्वरूप की दृढ़ प्रतीति हो जाने के पश्चात् राग-द्वेष को अवकाश नही रहता।

४. सांसारिक वस्तुओ पर जितनी अधिक आसक्ति रखोगे, वह उतनी ही दूर होती जायेगी। आसक्ति रखने पर वस्तु कदाचित् मिल भी गई तो वह सुख नही, दु ख ही देगी।

५ सूर्य की ओर मुख और छाया की ओर पीठ

करके चलने से छाया पीछे-पीछे आती है। इसी प्रकार निस्पृहता धारण करने पर सासारिक पदार्थ पीछे-पीछे दौडते हैं।

६. मनुष्य को निष्काम होकर कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। जो कामना से अलग रहता है वह सबका प्रिय बन जाता है। कामनाहीन वृत्ति वाले के लिए सिद्धि दूर नही रहती।

७ जैसे कमल की पखुडी जल मे रहती हुई भी जल से लिप्त नही होती, उसी प्रकार वीतरागी ससार मे रहते हुए भी सांसारिक दु ख प्रवाह मे लिप्त नही होते।

८. अपनी निस्पृहता एव उदारता को बढाए जाओ। जैसे थोड़े-से जीवन के लिए घर बनाते हो, वैसे ही अनन्त जीवन का भी विचार करो।

(६४) मानव-धर्म

१. सभी धर्म महान् हैं किन्तु मानव-धर्म उन सब मे महान् है।

२. मनुष्यत्व की श्रेष्ठता इस कारण नही है

कि मनुष्य अपनी विशिष्ट बुद्धि से बुरे कामो मे पशुओ को भी मात कर दे, वरन् वह प्राणी जगत् का राजा इसलिए है कि सद्गुणो को धारण करे, धर्म का पालन करे, स्वय जीवित रहते हुए दूसरो के जीवन मे सहायक बने।

३ मानव-शरीर का सदुपयोग किया जाय तो परमात्मा और आत्मा की एकरूपता होने मे देर न लगे।

४ मनुष्य जन्म बडे पुण्य से मिलता है। जो मनुष्य इस अमूल्य देह को पाकर भी व्यर्थ की मौज-शौक मे इसको खो देता है, उसके बराबर कोई मूर्ख नही।

५. जो लोग भोजन, वस्त्र, मकान आदि के उपयोग मे ही मनुष्य-जन्म को सार्थक मानते हैं, वे पशु-पक्षियो से अधिक कुछ भी प्रगति नही कर सकते। मनुष्य-जन्म की सार्थकता आत्मा के उस विकास मे निहित है जो न केवल क्षुद्र वर्तमान मे ही उपयोगी एव कल्याणमय है, वरन् जिससे अनन्त मगल की प्राप्ति होती है।

(९५) निर्भयता

१ जहा निर्लोभता है वहा निर्भयता है ।

२ जो शस्त्र का प्रयोग करता है उसे शस्त्र का भय बना ही रहता है । इसके विपरीत जो शस्त्र रखता ही नही, जो शस्त्रो द्वारा दूसरो को भयभीत नही करता, उसे शस्त्र भयभीत नही कर सकते ।

३ जिसने शस्त्र-भय पर विजय प्राप्त करली है, उसके सामने शस्त्र भोथरे हो जाते हैं ।

(९६) ग्रंथि-भेद

१ जिन्होने, परम हस की वृत्ति स्वीकार करके स्व-पर भेद विज्ञान का आश्रय लेकर अपनी आत्मा को शरीर से पृथक् कर लिया है, उन्हे शारीरिक वेदना विचलित नही कर सकती ।

२ आत्मा और शरीर का विवेक समझने वाला कभी पाप का भागी नही बनता ।

३ जो वस्तु तुमसे विलग हो सकती है, वह तुम्हारी नही है ।

४ पर-पदार्थों के साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करना महान् भ्रम है।

(६७) सुख-दुःख

१. ससार मे एक अवस्था के वाद दूसरी अवस्था होती ही रहती है। अगर उसमे राग-द्वेष का सम्मिश्रण हो गया तो वह सुख-दु ख देने वाला होगा। अगर राग-द्वेष का सम्मिश्रण न होने दिया और प्रत्येक अवस्था मे समभाव रखा गया तो कोई भी अवस्था दु ख नही पहुचा सकती। दु ख से बचने का यही एकमात्र उपाय है।

२. ससार के समस्त दु खो की जड है—मेरे-तेरे का भेदभाव। जव तक यह जड हरी-भरी है, दु खो का अकुर फूटता ही रहेगा। दु खो से वचने के लिए इस भेद भावना को नष्ट करना आवश्यक है।

३ आत्मा के सुख-दु ख का तन्त्र तुम्हारे ही हाथ मे है, किसी दूसरे के हाथ मे नही। फिर आत्मा को सुख रूप कामधेनु-कल्प क्यो नही वनाते ?

४ दु ख एक प्रकार का प्रतिकूल सवेदन है, वह अपने आप मे कुछ भी नही है।

५. जिस घटना को प्रतिकूल रूप मे अनुभव किया जाता है वही घटना दु ख बन जाती है।

६ अगर प्रतिकूल सवेदन न किया जाय तो दु ख की वेदना नही हो सकती।

७ दुःख को दु ख मानने पर ही दु ख दु खी वना सकता है। अगर दु ख को दु ख ही न माना जाय तो वह कुछ भी नही विगाड सकता।

८ साधारण जनता को अतिशय भीषण प्रतीत होने वाली घटना को भी मुनिजन अपनी सवेदना के साचे मे ढालकर सुखरूप परिणत कर लेते हैं।

९ अगर दु खमय ससार को सुखमय वनाना चाहते हो तो परमात्मा तथा परमात्म प्ररूपित धर्म का आश्रय लो।

१० सम्यग्ज्ञान के अपूर्व प्रकाश मे दु खो के

आद्य स्रोत को देखकर उसे बन्द कर देने से ही दु खों का अन्त आता है।

११ दु खो का आद्य स्रोत आत्मा का विकार-मय भाव है।

१२. दु खो का रोना मत रोओ। हाय दु ख, हाय दु ख मत चिल्लाओ। संसार में अगर दु ख है तो उन पर विजय प्राप्त करने की क्षमता भी तुम्हारे भीतर मौजूद है। रोना तो स्वय ही एक प्रकार का दु ख है। दु ख की सहायता से ही क्या दु खो को जीतना चाहते हो ?

१३. विपत्ति को सम्पत्ति के रूप मे परिणत करने का एक मात्र उपाय यह है कि विपत्ति से घवडाना नही चाहिए। विपत्ति को आत्म-कल्याण का श्रेष्ठ साधन समझकर, विपत्ति आने पर प्रसन्न रहना चाहिए।

१४. मधु से लिप्त तलवार की धार चाटने से जो सुख होता है और उस सुख के फलस्वरूप जितना दु ख होता है, उतना ही दु ख विषय-जन्य सुख भोगने से होता है।

१५ भोगोपभोग से प्राप्त होने वाला सुख, दु ख का कारण है। उस सुख में निराकुलता नही है, व्याकुलता है, अतृप्ति है, भय है, उसका शीघ्र अन्त हो जाता है।

१६ पर-पदार्थ के सयोग होने पर उसमे अहभाव या ममभाव धारण करने से दु ख की उत्पत्ति होती है। उस दु ख को मिटाने के लिए जीव फिर नवीन पदार्थों का सयोग चाहता है और परिणाम यह होता है कि दु.ख वढता ही चला जाता है।

१७. विपय-सुख विना आरभ-परिग्रह के हो ही नही सकता और आरभ-परिग्रह पाप के कारण है। पाप दु ख का कारण है। अतएव यह सुख, दु ख का कारण है।

१८. ससार सम्वन्धी लालसाओ को वढाना दु ख है और लालसाओ पर विजय प्राप्त करना सुख है।

१९ लोग समझते हैं कि सुभीते के साधन वढ जाने से हम सुखी हो गए हैं, पर वास्तव मे इन साधनो द्वारा सुख नही वढा, परतन्त्रता ही वढी है।

३१. सुख के ससार मे विलास के कीडे उत्पन्न होते हैं और दु ख की दुनिया मे दिव्य शक्ति से सम्पन्न पुरुषो का जन्म होता है।

३२. दूसरो के दु ख को अपना दु ख मानकर उनकी सहायता करना और अपनी सकीर्ण वृत्तियो को व्यापक वना लेना ही आध्यात्मिक उत्कर्ष का उपाय है।

३३ दूसरो को कष्ट से मुक्त करने के लिए स्वय कष्ट सहिष्णु बनो और दूसरे के सुख मे अपना सुख मानो। मावन-धर्म की यह पहली सीढी है।

३४ सुख देने मे सुख है, सुख लेने मे सुख नही है। सुख मागने से सुख नही मिलता है। लोग सुख की भीख मागते फिरते हैं, सुख के लिए भिखारी वने फिरते हैं, इसी कारण उन्हे सुख नही मिलता।

३५ रोग हो जाने पर रोग को कोसने से कोई लाभ नही होता। इसी प्रकार दु ख आ पडने पर दु'ख को कोसना व्यर्थ है। दु ख का मूल–पाप–समझकर उसे उखाड फेंकना ही उचित है।

३६. मनुष्य अपने सुख-दु ख, इष्ट-अनिष्ट की

तराजू पर दूसरो के सुख-दु ख को एव इष्ट-अनिष्ट को तोले ।

३७ जो व्यक्ति स्वय यतनपूर्वक कार्य करता है, उसके चित्त मे एक प्रकार के संतोषमय उल्लास का आविर्भाव होता है । वह सुखी होता है ।

(९८) यज्ञ

१. यह मेरी वस्तु नही है, इस भाव से, वस्तु पर से ममत्व हटा लेना और उस पर दूसरे का अधिकार कर देना यज्ञ का अर्थ है ।

२ द्रव्य पर अपना अधिकार न समझो । द्रव्य का अपने आपको ट्रस्टी मात्र समझो और सार्वजनिक हित मे द्रव्य का उपयोग करो । इसी को द्रव्य यज्ञ कहते है ।

३. श्रोत्र आदि इन्द्रियो को सयम की अग्नि मे हवन करना महायज्ञ है ।

(९९) निर्ममत्व भाव

१. अगर 'मैं' और 'मेरी' की मिथ्या धारणा

मिट जाय तो जीवन मे एक प्रकार की अलौकिक ऋजुता, निरुपम निस्पृहता और दिव्य शाति का उदय हो जाय।

२ जहा आत्मा किसी भी पर-पदार्थ के साथ अपना सम्बन्ध जोडती है, वहा दुःख का अकुर फूट निकलता है। जितने अशो मे सयोग की वृद्धि होती जाती है उतने ही अशो मे दु ख की वृद्धि होती जाती है।

३. ससारी जीव को दु.खो का जो ताता लगा रहता है, उसका मूल सयोग है।

४. जिसने शरीर को नाशवान और आत्मा को अविनाशी समझ लिया, क्या शरीर के नाश होने पर उसे दु.ख हो सकता है? आत्म-तत्त्व का परिज्ञान हो जाने पर शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाए तो भी दु.ख का स्पर्श नही होता।

५. ज्ञानवान् पुरुष सयोग को वियोग का पूर्व-रूप मानता है। अतएव वह सयोग के समय हर्ष-विभोर नही होता और वियोग के समय विषाद से मलीन नही होता। दोनो अवस्थाओ में वह मध्यस्थ भाव रखता है।

सुख की कुंजी उसे हाथ लग गई है, इसलिए दु ख उससे दूर-ही-दूर रहते हैं।

६ सच्चे कल्याण की चाहना है तो सब वस्तुओ पर से ममत्व हटा लो।

७ अपनी आत्मीय वस्तु का त्याग करके परकीय वस्तु को ग्रहण करना ही मोह कहलाता है। इसे छोडा और ईश्वर मिला।

८ सग्रहशीलता ने समाज मे वैषम्य का विष पैदा कर दिया है और वैपम्य ने समाज की शान्ति का सर्वनाश कर दिया है।

९. जो तुम्हारा है वह कभी तुम से विलग नही हो सकता। जो वस्तु तुम से विलग हो जाती या हो सकती है, वह तुम्हारी नही है।

१० पर-पदार्थों का सयोग होने से पहले आत्मा को जो शांति और स्वतत्रता प्राप्त रहती है, पदार्थों का सयोग होने पर वह चली जाती है। फिर भी कितने अचरज की वात है कि लोग शाति और

स्वतन्त्रता पाने के लिए अधिक-से-अधिक वस्तुएं जुटाने मे ही जुटे रहते हैं।

(१००) स्याद्वाद-अनेकान्तवाद

१. जगत् के धार्मिक और दार्शनिक दुराग्रहो को समाप्त करने के लिए स्याद्वाद के समान और कोई उपाय नही है।

२. अपने विरोधियो को काबू मे करने का और साथ ही उनके प्रति न्याय करने का अमोघ साधन अनेकान्तवाद है।

३ जैनधर्म के सिद्धान्तो को समझने के लिए अनेकान्तवाद चावी है।

४. अनेकान्तवाद की चावी से जव जैनधर्म का प्रवेश द्वार खोला जायेगा तभी जनधर्म का साक्षात्कार होगा।

५. मतान्ध होना मूर्खता का लक्षण है। विवेक के साथ विचार करने मे ही मानवीय मस्तिष्क की शोभा है।

६ धर्म सत्य है और सत्य सर्वत्र एक, है फिर धर्म अनेक कैसे हो सकते हैं? अतः धर्म एक है, अनेक नही।

(१०१) मृत्यु

१. ससार के लोग झूठ ही कहते हैं कि हमे मरने का ज्ञान है। जिसे मृत्यु का स्मरण होगा, वह बुरे काम क्यो करेगा?

२. आत्म-बल से सम्पन्न महात्मा मृत्यु का आलिगन करते समय रचमात्र भी खेद नही करते। मृत्यु उनके लिए सघन अन्धकार नही है, वरन् स्वर्ग-अपवर्ग की ओर ले जाने वाले देवदूत के समान है।

३. लोगो को पुरानी और फटी पोशाक बदलने मे जैसा आनन्द होता है, वैसा ही आनन्द ज्ञानी को मृत्यु के समय, शरीर बदलते समय, होता है।

४ जैसे कच्चे घडे को आग मे पकाने के पश्चात् ही उसमे पानी रह सकता है, उसी प्रकार मृत्यु का ताप सहने के पश्चात् ही आत्मा समाधिमरण के कारण शान्ति प्राप्त करता है।

(१०२) गुणग्राहकता

१ नाम पूजनीय नही होता, वेष वन्दनीय नही होती। पूजा या वन्दना गुणो की होती है और होनी चाहिए।

२. जिस मनुष्य के हृदय मे थोडे-से भी सुसस्कार विद्यमान हैं, वह गुणीजनो को देखकर प्रमुदित होता है। मानव-स्वभाव की यह आन्तरिक वृत्ति है, जो नैसर्गिक है।

३. जिसके हृदय मे गुणीजनों को देखने पर प्रमोद की लहर नही उठती, समझना चाहिए कि उनका हृदय सजीव नही है।

४ श्रोता को वक्ता के दोष न देखकर गुण ही ग्रहण करना चाहिए। जहां से अमृत मिल सकता है वहा से रक्त ग्रहण करना उचित नही है।

५ जैसे मक्खी गदगी खोजती है, उसी प्रकार तुम दूसरो के दुर्गुण खोजोगे तो अपने ही पैर पर कुल्हाडा मारना होगा।

६ पराये दुर्गुणो पर दृष्टि डालने और उनका प्रचार करने की अपेक्षा, चुपचाप अपने दुर्गुणो को पहचानना और उन्हे नष्ट करने का प्रयत्न करना, लाख दर्जे श्रेष्ठ कार्य है।

७ तुम मेरे शरीर से नही, वरन् मेरे सद्विचारो से प्रेम करो।

८ जैसे हस मोती चुगता है, उसी प्रकार तुम मेरे कथन मे से अच्छाई छाटकर ग्रहण कर लो।

६ दूसरो के अवगुण देखना स्वय एक अवगुण है। दुनिया के अवगुणो को चित्त में धारण करोगे तो चित्त अवगुणो का खजाना वन जायेगा।

(१०३) धूम्रपान-निषेध

१. वीडी पीने वालो का नैसर्गिक सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। रक्त उनका दूषित हो जाता है। दात काले पड जाते हैं। मुँह से वदवू इतनी निकलती है कि दूसरे से पास वैठा नही जाता। हाथ से भी दुर्गन्ध आने लगती है।

२. तमाखू ज्ञान-ततुओ पर विनाशक प्रभाव डालती है। हृदय को दुर्बल बनाती है। मन को भ्रान्त करके स्मरण शक्ति की जड उखाड फेंकती है।

३. बीड़ी पीने वालो की पाचन शक्ति मंद पड जाती है। अन्न पर उन्हे रुचि नही रहती।

४ धूम्रपान का व्यसन देश रूपी वृक्ष को उदेई लगने के समान है।

(१०४) मद्य-निषेध

१. शराब वह पिशाचिनी है जो मनुष्य को एक बार अपने अधीन करके उसका सत्व चूस लेती है।

२. शराब के सेवन से मनुष्य बेभान, पशु से भी बदतर और घृणास्पद बन जाता है।

३. शराब मे इतनी अधिक बुराइयां है कि कोई भी समझदार और विवेकशील पुरुष उनके विरुद्ध अपना मत नही दे सकता।

४. भूत वही जो सिर पर चढ़कर बोले, इस

कहावत के अनुसार मदिरा अपने दोषो को चिल्ला-चिल्ला कर प्रकट करती है।

(१०५) सौन्दर्य

१. बाहरी चमक-दमक को सुन्दर रूप मत समझो। जिस रूप को देखकर पाप कांपता है और धर्म प्रसन्न होता है, वही सच्चा सुरूप है—सौन्दर्य है।

२. असली सौन्दर्य आत्मा की वस्तु है। आत्मिक सौन्दर्य की सुनहरी किरणें जो बाहर प्रस्फुटित है, उन्ही से शरीर की सुन्दरता बढती है।

(१०६) द्रष्टाभाव

१. आत्मा की उपलब्धि द्रष्टा वृत्ति से होती है।

२ जो अपने आपको द्रष्टा और ससार को नाटक रूप देखता है, सारी शक्तियाँ उसके चरणो की सेवा करने को तैयार रहती हैं।

(१०७) संगति

१. 'कण्टके नैव कण्टकम्' नीति के अनुसार कुसंग का त्याग करने के लिए सत्सग का आश्रय लेना कर्त्तव्य हो जाता है।

२. धन माल लूटने वाला वैसा वैरी नही है, जैसा वैरी सच्ची बुद्धि बिगाडने वाला होता है।

३ विश्वास रखो, ईश्वर के दरबार मे सन्तोष करके रहोगे तो रोटी दौड़कर आएगी।

४ जिस दिन पृथ्वी पर पवित्रता का अस्तित्व नही रहेगा, उस दिन सूर्य, पृथ्वी और समुद्र अपनी-अपनी मर्यादा त्याग देंगे।

(१०८) प्रकीर्ण

१. शास्त्र मलीन रहने अथवा गदगी भरे स्थान मे रहने का आदेश नही देता। सच तो यह है कि गदगी एव मलिनता से ही रोग उत्पन्न होते हैं, और यह हिंसा का ही एक प्रकार है।

२ वर्तमान मे न भूल, भविष्य की ओर देख।

३ आमद से अधिक खर्च करके ऋणी मत वनो।

४ मनुष्य को सद्गुणो के प्रति नम्र और दुर्गुणो के प्रति कठोर होना चाहिए।

५ छोटी बात को महत्त्व देना और बडो को भूल जाना, बस यही से मूर्खता आरम्भ होती है।

६. हृदय ही वह भूमिका है जिस पर दु ख का विकराल विष वृक्ष उगता, अकुरित होता और फूलता-फलता है।

७ काम, अर्थ और धर्म का विरोधी न हो तथा अर्थ, धर्म और काम मे वाधक नही होने चाहिए।

८ आदर्श सामने रहेगा तो उसी ओर गति होगी।

९. तुम ऐसी जगह खडे हो, जहा से दो मार्ग फटते हैं। तुम जिधर चाहो, जा सकते हो। एक संसार

का मार्ग है, दूसरा मुक्ति का। एक बन्धन का, दूसरा स्वाधीनता का।

१०. हृदय की उपज और मस्तक की उपज के कामो की पहचान यह है कि जिस काम से अपना भी भला हो और दूसरे का भी भला हो, वह काम हृदय की उपज है। जिन कामो से अपना ही स्वार्थ सिद्ध करना होता है, दूसरे के कल्याण की ओर दृष्टिपात नही किया जाता किन्तु दूसरो को पगु बनाना अभीष्ट होता है, वे काम मस्तिष्क की उपज हैं। मस्तिष्क की उपज के काम राक्षसी राज्य के है और हृदय की उपज के काम रामराज्य के हैं।

११. अज्ञानी लोग हाड-पिंजरे का बाहरी रूप देखकर मोहित हो जाते है और ज्ञानीजन बाहर दिखाई देने वाले रूप के पीछे क्या छिपा है, इस प्रकार का विचार करके वैराग्य लाभ करते हैं।

१२. जिस प्रकार सोने के पात्र मे ही सिंहनी का दूध टिक सकता है, इसी प्रकार योग्य पात्र मे ही प्रभु की शिक्षा ठहर सकती है।

१३. जिसके शरीर के अंग-प्रत्यग से आत्म-तेज फूट पड़ता हो उसे अलकारो की अपेक्षा नही रहती।

१४. चिन्ता किसी भी मुसीबत का इलाज नही। वह स्वयं एक बड़ी मुसीबत है जो संकडो दूसरी मुसीबतो को घेर कर ले आती है।

१५ जो अपनी लघुता को समझता है और उसे विना संकोच प्रकट कर देता है, समझना चाहिए कि वह अपनी लघुता को त्यागना चाहता है और पूर्णता प्राप्त करने का अभिलाषी है।

१६. समाज मे फैली कुरीतियाँ जीवन की तह मे चट्टान की भाँति जमी हुई हैं जिन पर धर्म का अंकुर बढ नही सकता।

१७. जैसे शस्त्र से हिंसा होती है वैसे ही अधिक व्याज वसूल करने से लोगो के गले कटते हैं।

वीर संघ योजना

धर्मप्रधान भारत के आध्यात्मिक आकाश के प्रकाश-स्तभ, युगद्रष्टा, युगस्रष्टा, युग प्रवर्तक, ज्योतिर्धर जैनाचार्य स्व. श्री जवाहरलालजी म सा ने अपनी उद्बोधक प्रवचन शृ खलाओ मे सद्गुणो के प्रचार-प्रसार एव सयम साधना के निखार हेतु एक महान् योजना प्रस्तुत की थी। भगवान् महावीर के साधना-मार्ग को प्रशस्त बनाने वाली इस जीवनोन्नायक मध्यम-मार्गीय साधनायुक्त प्रचार-योजना का वीर-निर्वाण के ऐतिहासिक वर्ष मे 'वीर सघ योजना' के नाम से क्रियान्वयन प्रारम्भ कर दिया गया है।

'वीर सघ योजना' इन चार आधारभूत स्तभो पर आधारित है—१ निवृत्ति, २. स्वाध्याय, ३. साधना और ४ सेवा।

साधना के स्तर पर वीर सघ के सदस्यों की तीन श्रेणिया हैं—

१–उपासक सदस्य

उपासक सदस्य अपने परिवार एव व्यवसाय से

आशिक निवृत्ति लेकर प्रतिदिन सामायिकपूर्वक स्वाध्याय एव व्रत-प्रत्याख्यानपूर्वक साधना करते हुए निष्काम भाव से सेवारत होने का निरन्तर अभ्यास करेंगे ।

२–साधक सदस्य

साधक सदस्य उपासक सदस्यो से साधना के क्षेत्र मे विशिष्ट होगे । वे पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे और पारिवारिक तथा व्यावहारिक उत्तरदायित्वो से पूर्ण निवृत्त न हो पाने के कारण आशिक निवृत्ति के साथ ही स्वाध्याय तथा सेवा के क्षेत्र मे भी उपासक सदस्यो से अधिक समय देंगे ।

३–मुमुक्षु सदस्य

मुमुक्षु सदस्य परम पूज्य श्री जवाहराचार्य जी म सा के मूल स्वप्न को साकार बनाने वाले गृहस्थ एव साधुवर्ग के बीच की कडी होंगे। वे एक प्रकार से तीसरे आश्रम—वानप्रस्थ के तुल्य साधना युक्त जीवन के साथ धर्म-प्रचार की प्रवृत्तियो का सचालन करेंगे। उनकी गृहस्थ-जीवन से लगभग पूर्ण निवृत्ति होगी । वे परिवार एव गृहस्थ के साथ रहते हुए भी पारिवारिक उत्तर-

दायित्वो से विरत-अनासक्त व्रती श्रावक के रूप मे साधना व सेवाकार्यों मे सर्वभावेन रत रहेगे। भावना के स्तर पर वे गृहस्थ से दूर एवं साधुत्व के समीप रहेंगे। उनका जीवन स्वाध्याय, साधना और सेवा से ओत-प्रोत होगा। समाजसेवा एवं धर्म प्रभावना के लिए वे आवश्यकतानुसार देश-विदेश का प्रवास भी करेंगे। वे श्रावक वर्ग की उच्चस्थ स्थिति के आदर्श-स्वरूप होगे।



परिशिष्ट—२

श्रीमद् जवाहराचार्य विरचित साहित्य

(श्री जवाहर साहित्य समिति, भीनासर द्वारा प्रकाशित)

जवाहर किरणावली .

प्रथम किरण	— दिव्यदान	३ ७५ रु०
द्वितीय ”	— दिव्य जीवन	४ ०० ”
तृतीय ”	— दिव्य सदेश	२ ०० ”
चतुर्थ ”	— जीवन धर्म	४ ७५ ”
पाचवी ”	— सुवाहुकुमार	२ ५० ”
सातवी ”	— जवाहर स्मारक, प्रथम पुष्प	३ ०० ”
आठवी ”	— सम्यक्त्व पराक्रम, प्रथम भाग	२.५० ”
नवी ”	— ” ” द्वितीय भाग	२ ५० ”
दसवी ”	— ” ” तृतीय भाग	२ ५० ”
ग्यारहवी ”	— ” ” चतुर्थ भाग	३ ७५ ”
बारहवी ”	— ” ” पचम भाग	
सतरहवी ”	— पाण्डव-चरित्र, प्रथम भाग	१ ७५ ”
अठारहवी ”	— ” ” द्वितीय भाग	१.७५ ”
उन्नीसवी ”	— बीकानेर के व्याख्यान	२.७५ ”
इक्कीसवी ”	— मोरवी के व्याख्यान	२ ०० ”
बाईसवी ”	— सम्वत्सरी	२.०० ”
तेईसवी ”	— जामनगर के व्याख्यान	२ ०० ”

चौबीसवी किरण	— प्रार्थना प्रबोध	३ ७५ रु०
पच्चीसवी ”	— उदाहरणमाला, प्रथम भाग	२ ०० ”
छब्बीसवी ”	— उदाहरणमाला, द्वितीय भाग	३ २५ ”
सत्ताईसवी ”	— ” ” तृतीय भाग	२ २५ ”
अट्ठाईसवी ”	— नारी जीवन	२ २५ ”
उनतीसवी ”	— अनाथ भगवान्, प्रथम भाग	२.०० ”
तीसवी ”	— ” ” द्वितीय भाग	१.५० ”
सद्धर्म-मडन		११ ०० ”

(श्री सम्यक्ज्ञान मदिर, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित)

इकतीसवी किरण	— गृहस्थ धर्म, प्रथम भाग	१ ६२ रु०
बत्तीसवी किरण	— ” ” द्वितीय भाग	१.७५ ”
तेतीसवी किरण	— ” ” तृतीय भाग	१ ५० ”

(श्री जैन जवाहर मित्र मंडल, ब्यावर द्वारा प्रकाशित)

तेरहवी किरण	— धर्म और धर्म नायक	२ ६० रु०
चौदहवी ”	— राम वनगमन, प्रथम भाग	३ ०० ”
पन्द्रहवी ”	— ” ” द्वितीय भाग	३ ०० ”
चौतीसवी ”	— सती राजमती	२ ०० ”
पैंतीसवी ”	— सती मदनरेखा	२ ७५ ”

(श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन सघ द्वारा प्रकाशित)

छठी किरण	— रुक्मिणी विवाह	२.२५ रु०
सोलहवी किरण	— अजना	१ २५ ”

वीसवी किरण — शालिभद्र चरित्र	२ २५ रु०
हरिश्चन्द्र तारा	२.०० ”
जवाहर ज्योति	३ ०० ”
चिन्तन-मनन-अनुशीलन, प्रथम भाग	१ ०० ”
” ” ” द्वितीय भाग	१ ०० ”

(श्री श्वे साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर द्वारा प्रकाशित)

जवाहर–विचार सार	२ ५० रु०

(श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल, रतलाम द्वारा प्रकाशित)

सेट—१

श्री भगवती सूत्र पर व्याख्यान, भाग ३ ” ” ” ” ४ ” ” ” ” ५ ” ” ” ” ६	४ ०० रु०

सेट—२

अनुकम्पा–विचार, भाग १ ” ” ” २	२.०० रु०

सेट—३

राजकोट के व्याख्यान, भाग १ ” ” ” ” २ ” ” ” ” ३	२.५० रु०

सेट—४

सम्यक्त्व–स्वरूप श्रावक के चार शिक्षाव्रत श्रावक के तीन गुणव्रत श्रावक का अस्तेयव्रत श्रावक का सत्यव्रत परिग्रह परिमाणव्रत	१ ५

सेट—५

तीर्थङ्कर चरित्र, प्रथम भाग तीर्थङ्कर चरित्र, द्वितीय भाग सकडाल पुत्र सनाथ–अनाथ निर्णय श्वेताम्बर तेरह पथ	२ ५।

नोट —पूरे सेट लेने पर ११०० मे प्राप्त होगे।

धर्म व्याख्या	१ २५
सुदर्शन–चरित्र	२ २५
श्री सेठ धन्ना चरित्र	१ ५०

परिशिष्ट—३

हमारे अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

श्री गणेश स्मृति ग्रन्थमाला, बीकानेर

(परम पूज्य स्व आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा. के व्याख्यान)

जैन सस्कृति का राजमार्ग	२ ५० रु०
आत्म-दर्शन	१ ५० ”
नवीनता के अनुगामी (सम्यक्ज्ञान मन्दिर कलकत्ता का प्रकाशन)	१ २५ ”
पूज्य गणेशाचार्य जीवन-चरित्र (अर्द्ध मूल्य)	५ ०० ”

(परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानालाल जी म सा के प्रवचन)

पावन-प्रवचन, प्रथम भाग (जयपुर)	२ ५० रु०
” ” द्वितीय भाग ”	२ ५० ”
” ” तृतीय भाग ”	३ ५० ”
” ” चतुर्थ भाग ”	५ ०० ”
” ” पाचवा भाग ”	५ ५० ”
ताप और तप (मन्दसौर)	२ ५० ”

शाति के सोपान (ब्यावर)	३ २५ रु०
समता-दर्शन और व्यवहार	४ ०० "
आध्यात्मिक वैभव (बीकानेर)	१ ५० "
आध्यात्मिक आलोक (बीकानेर)	१ ५० "

विविध :

समराइच्च कहा, प्रथम भाग (मूल एव अनुवाद)	१५ ०० रु०
समता जीवन	० ५० "
समता-दर्शन, एक दिग्दर्शन (पाकेट बुक साइज मे)	०.५० "
सौन्दर्य-दर्शन (कथा-सग्रह)	२.०० "
श्रीमद् जवाहराचार्य, जीवन और व्यक्तित्व	२ ०० "
श्रीमद् जवाहराचार्य समाज	२ ०० "
श्रीमद् जवाहराचार्य . शिक्षा	२ ०० "
श्रीमद् जवाहराचार्य सूक्तिया	३ ०० "
अनुभव पराग	२.०० "

(परिनिर्वाण-वर्ष के उपलक्ष्य मे संघ के विशेष प्रकाशन)

भगवान् महावीर : आधुनिक सदर्भ मे (सम्पादक—डॉ० नरेन्द्र भानावत)	२५ ०० रु०
Lord Mahavir & His Times (Dr. K C Jain)	४०.०० "

Bhagwan Mahavir & His Relevence in Modern Times
(Dr N. Bhanawat & Dr P S. Jain) २५.०० रु०

संघ का मुखपत्र : श्रमणोपासक [पाक्षिक]

वार्षिक शुल्क १०.०० ,,
आजीवन सदस्यता १५१.०० ,,



परिशिष्ट—४

श्रीमद् जवाहराचार्य सुगम पुस्तकमाला

प्रकाशन-योजना

१. श्रीमद् जवाहराचार्य : जीवन और व्यक्तित्व
   - डॉ० नरेन्द्र भानावत, महावीर कोटिया

२. श्रीमद् जवाहराचार्य : धर्म
   - कन्हैयालाल लोढा

३ श्रीमद् जवाहराचार्य . समाज
   - ओंकार पारीक

४. श्रीमद् जवाहराचार्य : राष्ट्रधर्म
   - डॉ० इन्दरराज वैद

५. श्रीमद् जवाहराचार्य . शिक्षा
   - महावीर कोटिया

६ श्रीमद् जवाहराचार्य : नारी
   - डॉ० शान्ता भानावत

७ श्रीमद् जवाहराचार्य : साहित्य
   - डॉ० नरेन्द्र भानावत

८ श्रीमद् जवाहराचार्य . सूक्तिया
   - डॉ० नरेन्द्र भानावत, कन्हैयालाल लोढ़ा